MANISHI MAR 1968 G.K.U.

ॐ

मनीषी

1968

MANISHI

दयानन्द कॉलेज पत्रिका

अजमेर

कॉलेज अजमेर

विद्या परम देवतम्
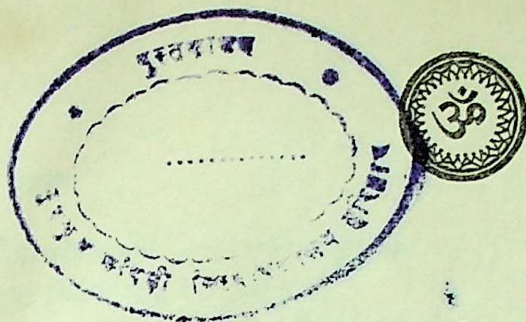
मनीषी

(दयानन्द कॉलेज पत्रिका, अजमेर)

A DAYANAND COLLEGE MAGAZINE

AJMER

1968

सम्पादक–मण्डल

प्रधान सम्पादक
र० शं० वर्मा

सम्पादक (अंग्रेजी) : म० कृ० मरवाह
सम्पादक (हिन्दी) : ल० काँ० शर्मा
छात्र सम्पादक (हिन्दी) : रमेश 'मित्र' एम. ए. पूर्वार्द्ध

नोट:—पत्रिका में दिये गये विचारों और तथ्यों का उत्तरदायित्व केवल सम्पादकों पर है और इसकी जिम्मेदारी कॉलेज अधिकारियों की नहीं है ।

संकेतिका

हिन्दी विभाग

CONTENTS

ENGLISH SECTION

श्री मेहरचन्द महाजन

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश

तथा

अध्यक्ष, सार्वभौम आर्य समाज शिक्षण संस्था परिषद्

दिनांक १२ दिसम्बर '६७ को चंडीगढ़ में जिनके असामयिक निधन से आर्य जगत को महान क्षति हुई है।

मनीषी

दयानन्द कॉलेज पत्रिका

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

वर्ष ३४ | अजमेर मार्च १९६८ | अकं १

ईश-प्रार्थना

ओं सहनाववतु,
सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै ।
ते जस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै ॥

हे परमपिता परमात्मा !
यही वरदान माँगते हैं हम आपसे,
कि हम रक्षा कर सकें अपनी
आने वाले कष्टों से,
ऐसी बुद्धि दीजिए ।
नाश कर सकें उन कष्टों का
हम सब मिल कर !
देश की रक्षा के पुरुषार्थ के
कार्यों को करें,

हम सब एक साथ मिलकर !
हे भगवान !
ऐसी शक्ति दें आप हमें,
कि
हम सब तेजस्वी होकर
एक साथ अध्ययन कर सकें !
किसी से विद्वेष न करें
और
सदैव हम सब एक होकर रहें !

संपादकीय

वैचारिक प्रतिक्रियाएं, स्तवन एवं श्रद्धांजलि

दल-बदल राजनीति का अभिशाप : राजनीतिक अस्थिरता !

१. भारतीय लोकतंत्र ने विगत दो दशकों में, अनेक कटु एवं तिक्त अनुभव, किए हैं। किसी भी राष्ट्र के जीवन में यद्यपि बीस वर्ष कोई अधिक महत्व नहीं रखते, किन्तु स्वाधीनता के पश्चात् हमारे राष्ट्रीय जीवन के विगत दो दशकों का महत्व सहज ही विस्मृत नहीं किया जा सकता। जहाँ एक ओर पुराने प्रतिष्ठित नेतृत्व का ह्रास अथवा विघटन हुआ है, वहीं नये नेतृत्व का उदय भविष्य के प्रति हमें आश्वस्त करता है और हममें यह विश्वास भी जगाता है कि नई पीढ़ी अपने उत्तरदायित्व एवं वर्चस्व के प्रति जागरूक है।

सत्ता का सिंहासन और उसका प्रलोभन, एक स्वर्ण-मृग के समान राजनीति की सीता को युग-युगान्त से ललचाता रहा है, किन्तु इधर हमारे विधायकों में इस प्रलोभन को लेकर जो अवांछनीय तत्व पनपे हैं, उनसे प्रबुद्ध-वर्ग में एक अभूतपूर्व चिन्ता भी व्याप्त होती जा रही है ! विभिन्न राज्यों में जब पुराने मंत्रिमण्डल टूटे और नये बने, तो हमें एक घृणित दृश्य भी देखने को मिला, और वह थी विधायकों की दल बदल की प्रवृत्ति ! नवजात हरियाणा राज्य का 'आयारामः गयाराम' हमारे राजनीतिक जगत में एक मुहावरा बन गया है और इसकी पृष्ठभूमि से जो कलुषित सौदेबाजी एवं व्यावसायिकता झांकती है, उससे सभी चिन्तनशील लोगों की भृकुटियां तन गई हैं ! क्या राजनीतिक सत्ता इतनी वांछनीय है कि उसके लिए हमारे विधायक नैतिकता को तिलांजलि दे कर और अपने सिद्धान्तों का गला घोंट कर आज इस दल में और कल उस दल में, राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति के लिए चले जाएं ? कुछ यथार्थद्रष्टा राजनीतिज्ञ कह सकते हैं कि यह संक्रातिकाल की अनिवार्यता है, इससे आंशिक रूप में सहमत होते हुए भी हमें यह कहना होगा कि हमारे राजनीतिक क्षितिज पर, जो अवांछनीय प्रवृत्तियां पनप रही हैं, वे देश के भविष्य को रसातल में ले जा सकती हैं। इससे पूर्व कि इस अनिष्टकारी अध्याय का प्रारम्भ हो, हमें इसकी रोकथाम के लिए प्रबल प्रयत्न एवं निष्ठा का परिचय देना होगा। विधायक की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की परिपूर्ति के स्थान पर राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि समझना होगा। क्या हम राष्ट्रपिता गाँधी के उस वाक्य को फिर दोहराएं कि लक्ष्य की पवित्रता के साथ-साथ साधनों की पवित्रता भी बड़ी महत्वपूर्ण है। 'येन-केन-प्रकारेण' की प्रवृत्ति राजनीति में एक दूषित अध्याय का सृजन करती है और इसी का परिणाम है कि एक प्रातः हम नये मन्त्रिमण्डल के निर्माण की सूचना पाते हैं. तो रात्रि को किसी अन्य मन्त्रिमण्डल के विघटित होने की सूचना भी हमारे मन में एक सनसनी पैदा कर देती है ! इन कारणों से राष्ट्रीय जीवन में जो राजनीतिक अस्थिरता आती जा रही रही है, उससे देश का भविष्य अंधकाराच्छन्न होता जा रहा है और कोई आश्चर्य नहीं कि इस पारस्परिक मतभेद एवं राष्ट्रीय हितों की क्षीणता के वातावरण में कोई विदेशी शक्ति हम पर हावी न हो जाये ! ऐसी स्थिति में हम देश के चिन्तनशील लोगों से अपील करना चाहते हैं कि वे समय रहते इस दूषित वातावरण की 'कुत्सा' को समाप्त करें और एक नए स्वास्थ्य-प्रदायक वातावरण की सृष्टि करें।

भारतीय लोकतंत्र इक्कीस साल का गबरू जवान है, उसमें महत्वाकांक्षा है, नवनिर्माण की उत्कंठा है; किन्तु इन सभी पवित्र उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक अनवरत क्रियाशीलता एंव राजनीतिक स्थिरता भी चाहिए। जब तक किसी दल को कार्य करने का पर्याप्त अवसर नहीं मिलेगा, तब तक राष्ट्रीय नवनिर्माण का स्वर कैसे मुखरित हो सकता है ! जो योजनाएं देश का कायापलट कर रही हैं, उसकी सफल परिसमाप्ति के लिए राजनीतिक स्थिरता अत्यन्त आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में देश के बढ़ते हुए महत्व को दृष्टि में रखते हुए यह स्थिरता और भी अधिक वांछनीय हो जाती है, किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि हम किसी दल-विशेष की स्थिरता की कामना करते हैं और परिवर्तन के प्रति विशेष रूप से

चिन्तित हैं। इस के विपरीत हम तो यही कहना चाहेंगे कि देश की राजनीति में जो भी परिवर्तन आएं, उनका एकमात्र लक्ष्य राष्ट्रीय हितों की परिपूर्ति ही होना चहिए। स्वदेश-भक्ति एंव राष्ट्रीय नवनिर्माण सर्वोपरि हैं और लोकतंत्र की जिस भावना को हमने अबतक पनपाया है, उसकी पावन परम्पराओं को विकसित करना हम सबका काम्य है।

इसके अतिरिक्त हमारी चिन्ता का एक कारण और भी है। आए दिन हमारी विधानसभाओं एवं संसद् में जो व्यवहार विभिन्न दलों के सदस्यों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, उसका देश की नई पीढ़ी पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। राजनीति की छीना-झपटी एवं सिद्धान्तों की उछल-कूद में नैतिकता आँसू बहाती है। और गुण्डागर्दी का वातावरण उभर कर सामने आता है! जो कुछ आज हमारी विधानसभाओं एवं संसद् में होता है, उसी का परिणाम हमें कल अपनी शिक्षण संस्थाओं एवं राष्ट्र के व्यापक प्रांगण में देखने को मिल सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने कार्य, व्यवहार एवं लक्ष्य के प्रति जागरूक हों और कोई भी ग़लत सबक नई पीढ़ी के सामने न रखें। हमारे राष्ट्रीय नेता लोकतंत्र की जिस आधारशिला को रखने जा रहे हैं, उसकी नींव में यह अवांछनीय प्रवृत्तियां घातक सिद्ध हो सकती हैं। लोकतंत्र के जिस विशाल भवन की परिकल्पना हमारे नेताओं को आन्दोलित करती रही है, उसकी भी यही मांग है कि हम अपने उद्देश्यों के प्रति स्पष्ट एवं जागरूक हों और उनकी प्राप्ति के लिए जिन साधनों को अपनायें, वे पवित्र एवं वांछनीय हों। देश के आंतरिक वातावरण में विघटन, पृथक्करण एवं साम्प्रदायिकता न पनपे और इसके स्थान पर सामान्य नागरिक के मनमें राष्ट्र की नीतियों के प्रति कोई शंका उत्पन्न न हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि हमारे विधायक एवं संसद्-सदस्य अपने व्यवहार एवं कार्य के प्रति विशेष रूप से जागरूक हों और देश के नवयुवक-वर्ग के लिये अक्षय प्रेरणा के स्त्रोत सिद्ध हों।

२. पुस्तकालय और अध्ययन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति :

जितना दो वर्षों से हम इन्हीं पंक्तियों में पुस्तकालय के जन्म और विकास की कहानी कहते रहे हैं, कुछ अपेक्षायें एवं चुनौतियां भी प्रस्तुत की गईं थीं; हमें प्रसन्नता है कि उनका सामुचित उत्तर तो नहीं, किन्तु आंशिक उत्तर अवश्य मिला है। इस वर्ष पुस्तकालय-भवन की साज-सज्जा में वृद्धि हुई है। पुस्तक-संग्रहालय के केन्द्रीय मंच पर प्रेरणादायी गुलदस्ते रखे गए हैं एवं केन्द्रीय अध्ययन-कक्ष में मनभावन-बिछावन ऐसे विद्यार्थियों के लिए भी आमंत्रणकारी सिद्ध हुआ है, जो पठन-पाठन से कोसों दूर भागा करते थे। पत्र-पत्रिका-कक्ष में काफी हलचल रहने लगी है और पुस्तक-संग्रहालय के केन्द्रीय-कक्ष में भी जिज्ञासु विद्यार्थियों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है, पर सामूहिक अध्ययन-कक्ष एवं वैयक्तिक अध्ययन-कक्ष (क्यूबीकल्स) अब भी अकेलेपन की सांय-साँय से आक्रान्त हैं। यदा-कदा ही इन कक्षों में जिज्ञासु विद्यार्थियों के दर्शन हो पाते हैं। एकाकीपन का यह संत्रास महाविद्यालय के सभी सदस्यों के प्रति एक खुली चुनौती है। क्या हम उम्मीद करें कि निकट भविष्य में नए आने वाले विद्यार्थियों की पाँत इसका समुचित उत्तर दे सकेगी।

जब से जियालाल शिक्षक-प्रशिक्षण-संस्थान के पुस्तकालय का, केन्द्रीय पुस्तकालय में विलीनीकरण हुआ है, तब से ऊपर की मंजिल में भी चहल-पहल बढ गई है, किन्तु अभी यह अधिक उत्साहजनक नहीं कही जा सकती। दूसरी मंजिल पर जहाँ पत्र-पत्रिकाओं की सजिल्द फाइलों का सचयन है, वहीं अब शिक्षा-साहित्य का भी समुचित भण्डार है। एक ओर कोने में वैदिक साहित्य का संग्रह भी बड़ी निष्ठा से किया गया है, किन्तु यह निष्ठा तभी सनाथ हो सकेगी, जबकि इन समस्त सुविधाओं का हम पूर्णतः उपयोग करें।

पत्र-पत्रिका कक्ष के सन्दर्भ में एक बात हमें प्रायः खटकती है और वह यह है कि महाविद्यालय की हिन्दी-प्रधान नीति के बावजूद हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएं कम संख्या में आती हैं; यद्यपि इन्हीं का उपयोग सबसे अधिक होता है! अंग्रेजी की पत्रिकायें या अन्य भाषाओं की पत्रिकायें आयें। इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु विद्यार्थियों की

मनःस्थिति एवं आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की संख्या निश्चय ही बढ़नी चाहिए। क्या हम आशा करें कि हमारे हिन्दी-प्रेमी आचार्य महोदय इस ओर भी समुचित ध्यान देकर, अविलम्ब इस अभाव की परिपूर्ति करेंगे?

पुस्तकालय का वातावरण निश्चय ही आमंत्रणकारी है और यह एक ऐसी ज्ञान-निधि है, जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। बाहर से आने वाले अतिथियों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है, किन्तु अब भी एक कमी हमें खटकती है, और वह है पुस्तकालय-भवन के अनुरूप विशाल पुस्तक-भण्डार की! इसमें कोई संदेह नहीं कि ज्यों-ज्यों वित्तीय सुविधायें प्राप्त होती जा रही हैं, त्यों-त्यों इसका निरंतर विकास होता जा रहा है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं राजस्थान सरकार इस अभाव की पूर्ति में हमारे सहायक रहे हैं। यदि निकट भविष्य में इनकी सहायता हमें और भी अधिक मात्रा में सुलभ हो सकी, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि यह पुस्तकालय आत्मा की दृष्टि से भी सम्पन्न हो जाएगा और इस पर अजमेर नगर गर्व कर सकेगा!

३. हिन्दी-संस्कृत में स्नातकोत्तर कक्षाएँ

हिन्दी-संस्कृत में स्नातकोत्तर कक्षायें आरम्भ होने के साथ ही महाविद्यालय के कला संकाय में एक ऐसी आवश्यकता की परिपूर्ति हुई है, जिसके अभाव से हम अनेक वर्षों से संत्रस्त थे। एक ऐसी शिक्षण-संस्था, जो सार्वजनिक जीवन में हिन्दी के वर्चस्व को स्वीकार करती हो और हिन्दी की निधि को निरंतर विकसित करने की दृष्टि से उसकी श्रद्धेया माता संस्कृति को भी परम आदर की दृष्टि से देखती हो, उसी संस्था में हिन्दी-संस्कृत के सर्वोच्च अध्ययन की व्यवस्था न होना एक बड़ी लज्जाजनक बात थी! यद्यपि आचार्य महोदय इस अभाव की परिपूर्ति के लिए १९६५ से ही सन्नद्ध थे, किन्तु परिस्थितियों की विपरीतता, उनके मार्ग में एक बाधा उपस्थित करती रही! उनकी अनवरत लगन एवं कार्य-निष्ठा से सन् १९६७ के सत्र से इस चिर-अभाव की भी परिपूर्ति हो सकी। हिन्दी में आशा से अधिक विद्यार्थियों का प्रवेश और संस्कृत में तीन विद्यार्थियों का मिल जाना एक विस्मयकारी उपलब्धि थी। (दुर्भाग्य से संस्कृत में केवल एक ही विद्यार्थी, जो कि कॉलेज में प्राध्यापक भी हैं, अंत तक टिके रह सके!) दयानन्द कॉलेज में राजनीति-विज्ञान, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र एवं चित्रकला में स्नातकोत्तर विभाग थे, किन्तु हिन्दी और संस्कृत विभाग की अभिवृद्धि से कला संकाय में एक पूर्णता-सी आ गई। अर्थशास्त्र एवं अंग्रेजी ही दो ऐसे विषय रहे हैं, जिनमें स्नातकोत्तर विभाग की आवश्यकता है। कॉलेज के विकास के अगले चरण में हमें विश्वास है कि इस अभाव की भी परिपूर्ति हो सकेगी। वाणिज्य एवं शिक्षा संकाय में स्नातकोत्तर अध्ययन की व्यवस्था है ही, किन्तु विज्ञान एवं कृषि में अभी इस चरमोपलब्धि को पाना शेष है। सौभाग्य की बात है कि इन अभावों के प्रति महाविद्यालय का अधिकारी-वर्ग पर्याप्त सजग है और ज्यों ही सुविधायें एवं साधन सुलभ होंगे, त्यों ही महाविद्यालय को पूर्णत्व की प्राप्ति हो सकेगी।

४. अजयमेरू की तृषित धरा में बनास का जलावतरण!

अजमेर, राजस्थान का एक समृद्ध एवं केन्द्रीय नगर होने के कारण, एक विशेष महत्व का अधिकारी रहा है। यहाँ पर राजस्थान लोक सेवा आयोग, माध्यमिक शिक्षा-मंडल एवं राजस्व-मंडल और अब हिन्दुस्तान मशीन-टूल्स लिमिटेड (एच एम टी) के अस्तित्व में आ जाने से इस नगर की गरिमा में और भी वृद्धि हुई है। एक अभाव विगत दशक से इस नगर को आक्रांत किए था, और वह था जल-व्यवस्था का सीमित वितरण! इस संकट की परिकल्पना हम तभी कर सकते हैं, जब पानी के लिए रात-रात भर जागने वाले लोगों की कष्ट-कहानी सुनी जाए! पिछले कुछ सालों में नगर की जनसंख्या में निरंतर वृद्धि हुई है, किन्तु उसके जलसाधन सीमित ही रहे और उनका परिणाम था जल का निरंतर अभाव एवं तृषित व्यक्तियों की करुणा-कहानी, जो कि खारे जल से अपनी तृषा का निवारण करते थे! एक साल तो ये खारे पानी के कुएं भी जवाब दे गए, और तब उन अधिकारियों के कानों पर, जिन पर कभी भी जूं नहीं रेंगती थी, चिन्ता के बादल उमड़ने लगे! बनास से जल लाने की योजना बनी, किन्तु

राजस्थान [illegible] को सन्देश देते हुए
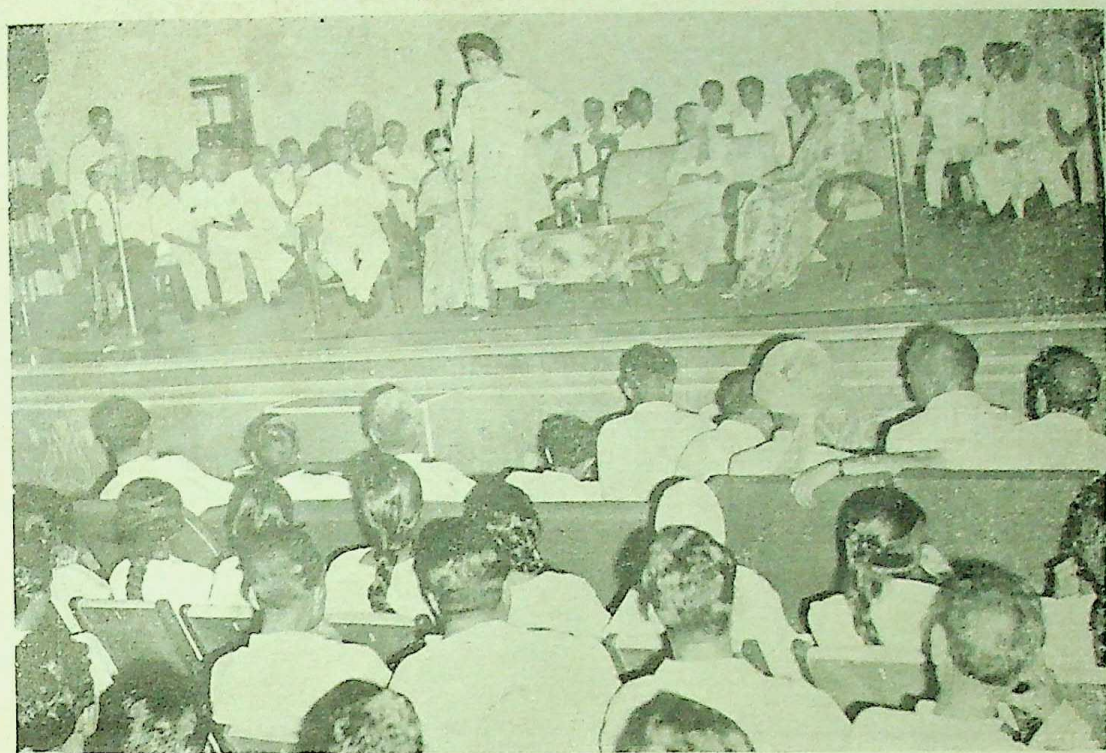
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दल के सदस्य

कॉलेज के नवीन पुस्तकालय कक्ष में

१५ अगस्त १९६७ की एडवर्ड मैमोरियल की प्रदर्शिनी में कॉलेज द्वारा प्रस्तुत कृषि एवं खाद्य प्रदर्शिनी
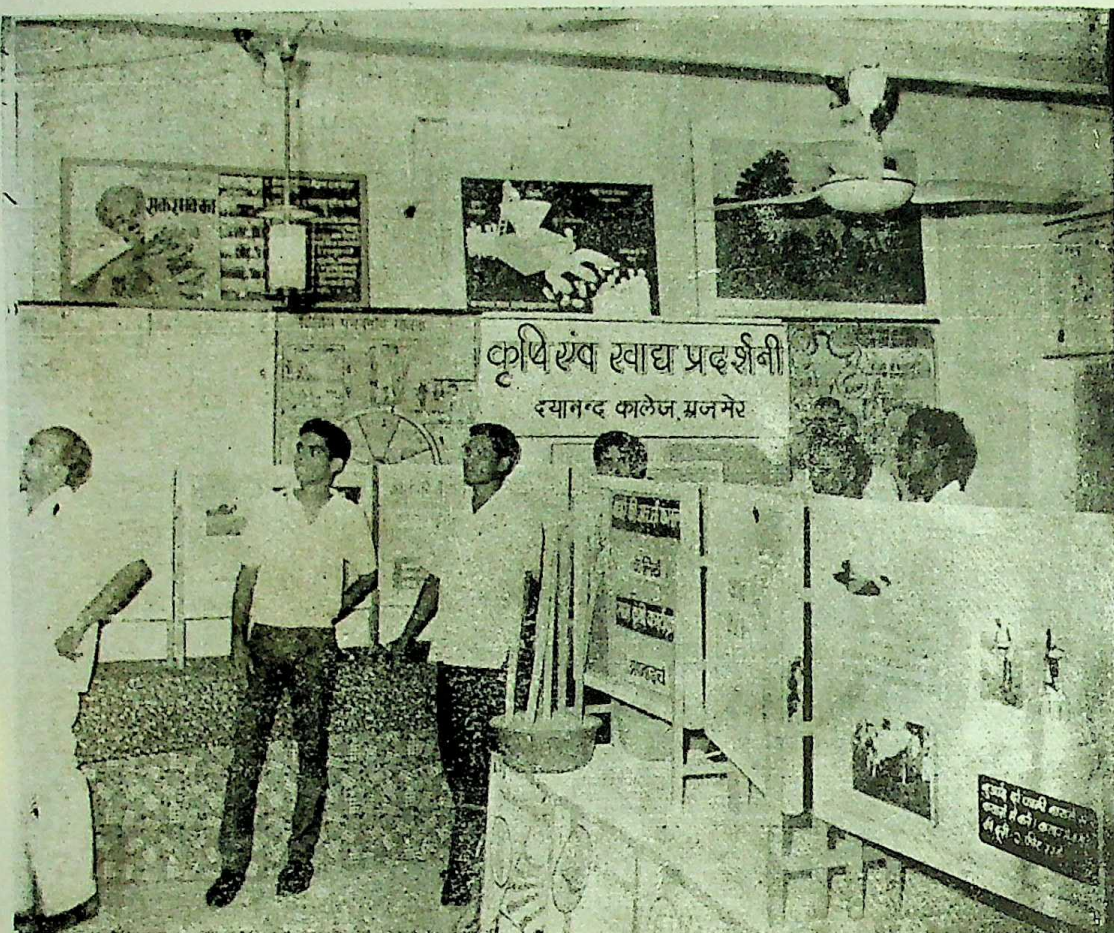
श्री सालिग राम गोयल, प्रवक्ता (भौतिक शास्त्र) जिनके आकस्मिक निधन (२३-१०-६७) ने मनीषी परिवार को शोकाभिभूत कर दिया
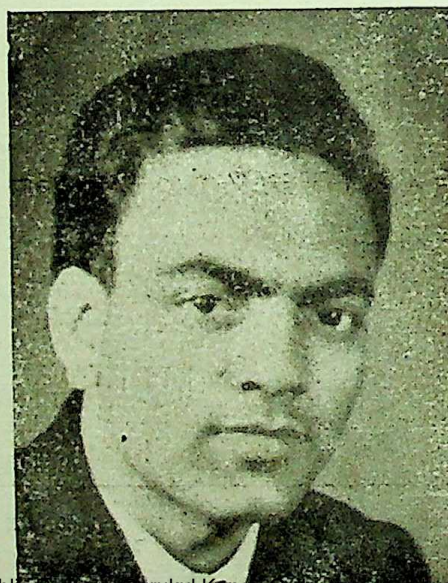
कल-युग का भागीरथ अपनी राजनीति के मायाजाल में ऐसा उलझा कि वह हर साल चुनाव से पहले वादे तो बहुत करता और सरसब्ज बाग भी बहुत दिखाता, पर न जाने ऐसी कौनसी बात थी, जिसके कारण ये सारी योजनाएं कागज़ पर ही धरना दिए बैठी रहतीं ! जनता का असंतोष निरंतर उमड़ने-घुमड़ने लगा और सत्ताधारियों के सिंहासन डोलने लगे ! एक कहावत है: 'बारह साल में तो घूरे के भी भाग पलटते हैं ।'-तो अजमेर के भाग पलटे और बनास-योजना को सन् १९६८ के ३० मार्च को अपनी परिपूर्ति का अंतिम चरण मिल सका ! (यद्यपि अब भी इस योजना के अन्तर्गत काफी काम बाकी है !) किन्तु, हमें उम्मीद करनी चाहिए कि घूरे के भाग पलटने के लिए अब फिर बारह साल की दरकार न होगी !

अजयमेरु की तृषित धरा पर बनास का जलावतरण तो हो गया है, और अब वे प्राणी जो एक समय नहाने के लिए तरसते थे, संध्या को भी नहाते हुए देखे जा सकते हैं । पर अभी नगर के सभी क्षेत्रों में जल का वितरण पूर्ण मात्रा में नहीं हो सका है; यह जितनी जल्दी सम्पन्न होगा, उतनी ही जल्दी हम अजमेर को काया पलटते हुए देख सकेंगे ! अजमेर, अपने उद्यानों एवं वाटिकाओं के लिये प्रसिद्ध रहा है । यहाँ फल, फूल एवं सब्जियां काफी मात्रा में होते हैं, बनास के इस नए जल से कुंवारी धरती अपने परिपूर्ण योवन को प्राप्त कर सकेगी, एसा विश्वास किया जाना चाहिए । जल मनुष्य की एक बुनियादी आवश्यकता है और इसकी प्रचुरता से नगर के औद्योगीकरण में पर्याप्त वृद्धि होनी है । जल के अभाव में, हमारी उत्साही उद्योगपतियों की योजनाएं, अधर में लटकी हुई थीं, जल के पूर्ण मात्रा में मिलने पर ये योजनाएं साकार हो सकेंगी और तब हम एक नए समृद्ध जीवन का आस्वादन कर सकेंगे ! औद्योगीकरण के साथही-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के निर्माण में भी इस बुनियादी आवश्यकता की पूर्त्ति का प्रचुर देय है । क्या हम आशा करें कि 'चश्म-ए-नूर' के उजड़े हुए फिज़ां में नूरजहाँ की तरह नई बुलबुलें फिर अपना आशियाँ बसा सकेंगी ?

५. स्नातकोत्तर कक्षाओं का मानसिक क्षितिज: विचार-गोष्ठियाँ !

शिक्षा को जीवन्त बनाने के संदर्भ में प्रायः शिक्षाशास्त्रियों द्वारा इस बात की महती आवश्यकता प्रतिपादित की जाती रही है कि ज्ञान विज्ञान को जीवन की ऊष्मा प्रदान करने के लिए, सजीव विचार गोष्ठियों की आयोजना की जाए । जहाँ शोधकार्य से एकांतिक साधना को सम्बल प्राप्त होता है, वहीं विचार-गोष्ठियों से बौद्धिक जीवन के सामूहिक पक्ष को प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्राप्त होती है । स्नातक एवं अधिस्नातक स्तर पर हमारे महाविद्यालय में ये प्रयोग सम्पन्न हुए हैं । इन्हीं पंक्तियों में हमने स्नातकोत्तर शिक्षा की चरम-उपलब्धि के रूप में शोध कार्य की महत्ता पर विचार प्रकट किया था । इस उद्देश्य की आवश्यकताओं की परिपूर्ति के लिए विचार-गोष्ठियां प्रारम्भिक सोपान का कार्य करती हैं । यह प्रसन्नता की बात है कि विभिन्न विषयों में इस प्रकार की विचार गोष्ठियां आयोजित की गई हैं और पारस्परिक विचार-विनिमय से हमारे विद्यार्थी एवं प्राध्यापक लाभान्वित हुए हैं, किन्तु इस बात की अब और भी आवश्यकता अनुभव की जा रही है कि इन विचार-गोष्ठियों को योजनाबद्ध रूप दिया जा सके । इनके सम्मुख कुछ सुस्पष्ट उद्देश्य हों, जिन्हें कि हम क्रमशः लक्ष्यसिद्धि के रूप में प्राप्त कर सकें । हिन्दी की अधिस्नातक कक्षाओं में एवं विज्ञान की स्नातक कक्षाओं में यह प्रयोग सफलतापूवक सम्पन्न हुआ इसके कुछ परिणाम भी हमारे सामने आये । इसी अंक के अगले पृष्ठों में आप इन विचार-गोष्ठियों के परिपक्व फलों का आस्वादन कर सकेंगे । आवश्यकता इस बात की है कि प्राध्यापकगण एवं बाहर से आए विद्वान् भी इस पावन अनुष्ठान में पर्याप्त योग दें । उनके सहयोग एवं मार्ग-दर्शन पर ही इन विचार-गोष्ठियों का भविष्य निर्भर करता है । आशा की जानी चाहिये कि इन गोष्ठियों के वित्तीय पक्ष को महाविद्यालय के विद्यार्थी-कोष से पर्याप्त अनुदान एवं सहायता-सुविधा मिल सकेगी ।

६. साहित्य-परिषद् की विकास-रेखाएँ

हिन्दी साहित्य-परिषद् के क्रिया-कलाप में, अधिस्नातक कक्षायें खुल जाने के कारण, एक विशेष स्फूर्ति एवं गतिविधि

इस वर्ष देखी गई। बड़े उत्साह एवं योजना के साथ चुनाव सम्पन्न हुए और एक नई जीवनानुभुति के साथ साहित्य-परिषद का उद्घाटन प्राचार्य श्री विपिन बिहारी वाजपेयी के मूल्यवान विचारों के साथ सम्पन्न हुआ। आपने परिषदों के क्रिया-कलाप की चर्चा करते हुये साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों का उल्लेख किया और सृजनात्मक प्रतिभा के विकास के लिये एक स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की। श्रद्धेय वाजपेयीजी ने तरुण साहित्यकारों का उद्बोधन करते हुये कहा कि उन्हें साहित्य की विविध विधाओं के सृजन में रुचि लेनी चाहिये और समसामयिक साहित्य की गतिविधियों से भी अवगत रहना चाहिये।

परिषद् के समापन समारोह के अवसर पर स्थानीय क्षेत्रीय महाविद्यालय के प्राचार्य श्री प्रभुदयाल शर्मा हमारे मुख्य अतिथि थे। आपकी अध्यक्षता में एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें जियालाल शिक्षक-प्रशिक्षण-संस्थान के प्रोफेसर श्री भूदेव शास्त्री ने अपने उद्बोधक एवं तथ्यप्रवण विचारों से परिषद् के सदस्यों को एक नई प्रेरणा प्रदान की। इसी अवसर पर रवीन्द्र की कहानी 'शेषेर रात्रि' के नाट्य रूपान्तर को अभिनीत किया गया, जो कि विद्युत-व्यवस्था के सहयोग न देने के कारण, दृश्य तो रहा, किन्तु श्रव्य न हो सका।

वित्तीय दृष्टि से परिषद् ने पर्याप्त प्रगति की, इसके लिए परिषद् के परामर्शदाता एवं विभागाध्यक्ष के प्रयत्न निश्चय ही अभिनंदनीय हैं। कुल मिलाकर ऐसा अनुभव हुआ कि हम में जोश-खरोश तो काफी रहा, किन्तु पुष्ट योजना एवं लक्ष्यों के प्रति सजगता न हो पाने के कारण हम अपने ईप्सित फल को प्राप्त न कर सके। इस वर्ष का यह कटु अनुभव भविष्य के लिए शिक्षा-प्रदायक हो, यही कामना हम कर सकते हैं।

परिषद् की एक महत्वपूर्ण एवं अंतिम उपलब्धि है, विभागीय पुस्तकालय के लिए धन-संग्रह। आशा की जाती है कि इस संग्रह में अगले वर्ष और भी धनराशि का योग होगा और हम विभागीय पुस्तकालय के स्वप्न को मूर्त रूप प्रदान कर सकेंगे। इसमें उच्चस्तरीय पुस्तकों एवं साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए प्रावधान होना चाहिए। स्नातक एवं अधिस्नातक—सभी कक्षाओं की आवश्यकता पूर्ति हमारा लक्ष्य है। सन्दर्भ-ग्रन्थों एवं प्रामाणिक कोषों से भी यदि विभागीय पुस्तकालय विभूषित हो, तो अध्यापक-वर्ग एवं उच्चकक्षाओं के विद्यार्थियों में एक नयी संचेतना देखी जा सकती है। एवमस्तु।

७. सर्वोत्तम रचना-पुरस्कार : बधाई !

इस वर्ष 'मनीषी' के हिन्दी विभाग में सर्वोत्तम रचनाओं के रूप में दो समीक्षात्मक निबन्ध-प्रथम एवं द्वितीय-निर्णीत हुए : प्रथम निबन्ध के लेखक हैं, श्री रमेश 'मित्र' और द्वितीय के श्री भँवरलाल पारीक। इन दोनों छात्रों में समीक्षात्मक निबन्धों के प्रति एक विशेष अभिरुचि देखी गई, इनकी शैली एवं तर्क-योजना भी प्रभावशाली हैं। रचनात्मक साहित्य में श्री क्षेमेन्द्र की कहानी अनुभूतिशील चेतना से परिप्लावित है और उनमें एक श्रेष्ठ कहानीकार के अंकुर निहित हैं। हम इन तरुण लेखकों की प्रतिभा के समुचित विकास की कामना करते है और उन्हें अपनी ओर से हार्दिक बधाई भी देते हैं।

८. शोध के बढ़ते हुए चरण : डॉक्टर-द्वय की उपलब्धियाँ :

इन्हीं पंक्तियों में हमने गत वर्ष डॉ. कैलाश नारायण गुप्ता का अभिनन्दन किया था, और भी अधिक हर्ष की बात है कि इस सत्र में उनके बौद्धिक परिवार में दो और उल्लेखनीय अभिवृद्धियाँ हुई हैं। प्रथम हैं डॉ० मदन मोहन लवानिया और द्वितीय हैं डॉ० राजेन्द्रकुमार सक्सेना। डॉ० लवानिया का शोध-विषय है : 'संक्रमण काल में एक ग्राम : बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में ! (ए विलेज इन ट्रान्जीशन) और उनके निदेशक रहे हैं डॉ. रामनारायण सक्सेना, निदेशक : समाज-विज्ञान-संस्थान, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

आपके शोध-प्रबन्ध का निष्कर्ष इस प्रकार है : राजस्थान के एक ग्राम का, बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में, समाज शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मूल रूप से इसमें ग्रामीणों के बदलते हुए नैतिक मूल्य, विचार, व्यवहार, सामाजिक संगठन एवं संरचना पर शोधकर्त्ता ने

विशेष रूप से प्रकाश डाला है । स्वाधीनता के पश्चात के विगत दो दशकों में जो भी परिवर्तन हमारे ग्राम में उपस्थित हुए हैं, उन्हीं का मार्मिक विश्लेषण डॉ० लवानिया की मुख्य उपलब्धि रही है ।

प्रोफेसर राजेन्द्रकुमार सक्सेना को इसी सत्र में पंजाब विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के अन्तर्गत, उल्लेखनीय शोधपूर्ण कार्य करने के उपलक्ष्य में, डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई है। उनका विषय था : 'मराठों का प्रमुख राजस्थानी रियासतों से १७६१-१८१८ ईस्वी के बीच सम्बन्ध ।' इनके निर्देशक थे-पंजाव विश्वविद्यालत के इतिहास विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष श्री आर. आर. सेठी ।

आपके शोध-प्रबन्ध का निष्कर्ष इस प्रकार है : मराठों के आततायी व्यवहार से राजपूत शासक अत्यन्त क्षुब्ध थे। यद्यपि उन्हें उत्तरी भारत की राजनीति में प्रविष्ट कराने में राजपूतों का ही हाथ था पर फिर भी जीर्ण-जर्जर क्षात्र-शक्ति पर मराठों द्वारा जो कड़ी शर्तें थोपी गई, उनसे विवश होकर राजपूत राजाओं ने ईस्ट इण्डिया कंपनी के हाथ अपनी आज़ादी भी गिरवी रख दी, और तब आरम्भ हुआ उन कुचक्रों का, जिनके कारण एक विदेशी शक्ति उत्तरोत्तर भारत की राजनीति पर हावी होती गई !

महाविद्यालय के सारस्वत जीवन में, इस प्रकार दो डॉक्टरों की और अभिवृद्धि हुई है। इससे कॉलेज की गरिमा एवं राजस्थान के बौद्धिक जीवन में उनकी प्रतिष्ठा को चार चाँद लगेंगे, यह निर्विवाद है। डॉ० मदनमोहन लवानिया एवं डॉ० राजेन्द्रकुमार सक्सेना गतिशील एवं कर्मठ व्यक्तित्व के धनी हैं। इनसे विद्यार्थियों को सदैव एक सुस्पष्ट मार्गदर्शन एवं प्रेरणा मिलती रही है, यह हम सबके लिए सौभाग्य की बात है। इस अभिवृद्धि से आगे चलकर छात्रों को शोध-कार्य में प्रवृत्त होने और उल्लेखनीय बौद्धिक उपलब्धि में दत्तचित होने की प्रेरणा भी प्राप्त होगी, ऐसा सहज ही सोचा जा सकता है। मनीषी-परिवार डॉक्टरद्वय का अभिनन्दन करता है और उनके उपयोगी एवं उल्लेखनीय सारस्वत जीवन की दिन-दूनी, रात-चौगुनी उन्नति की आकांक्षा भी !

९. तरुण प्राध्यापक श्री शालिगराम गोयल का निधन।

सत्रारम्भ के समय तरुण प्राध्यापक श्री गोयल के आकस्मिक निधन ने हम सबको शोकाभिभूत कर दिया। अभी वे जीवन के २५ बसन्त ही देख पाये थे कि यह वज्रपात हो गया ! जीवन के एक कोमल किशलय को क्रूर झंझावात ने लील लिया ! वे महाविद्यालय के भौतिक-विज्ञान-विभाग में एक तरुण प्रवक्ता थे, उनके सम्मुख जीवन की अनन्त संभावनाएँ हिलोरें ले रही थीं ‥ कि एक क्रूर प्रात : यह सुना गया कि गोयल साहब नहीं रहे। मृत्यु ने उन्हें हमसे छीन लिया। यह तरुण प्राध्यापक अपने विद्यार्थियों में बहुत ही अधिक लोकप्रिय था, क्योंकि वे विद्यार्थियों के मनोवेगों को, उनके प्रेरणास्त्रोतों को भली-भांति जानते थे। मनीषी-परिवार उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है और उनकी आत्मा की शान्ति के लिए अनन्त प्रार्थनाएँ भी।

१०. दिवगंत शिक्षाशास्त्री, राजनेता एवं अंतरिक्ष यात्री :

डॉ० मेहरचन्द महाजन डी. ए. वी. आन्दोलन के सूत्रधार एवं मंत्रदाता थे। पंजाब के डी. ए. वी. कॉलिजों पर तो उनका वरदहस्त था ही, किन्तु समस्त भारत के डी. ए वी. कॉलेज उनके स्नेह एवं संरक्षण को प्राप्त कर सके थे। उनके निधन से दयानन्द विश्वविद्यालय की योजनाओं पर असह्य आघात हुआ है, किन्तु यदि आर्य-जगत् उनकी अंतिम आकांक्षा को पूर्ण कर सका; तो यह उनकी आत्मा के प्रति सर्वोत्तम श्रद्धांजलि होगी। डॉ० महाजन अपनी न्ययप्रिय एवं कर्तव्यनिष्ठा के प्रति सदैव जागरूक रहे। उन्हीं के कारण पंजाब एवं दिल्ली में राजकीय महाविद्यालयों की तुलना में डी. ए. वी. कॉलिजों का मस्तक सदैव ऊँचा रहा और ऐसे भी दर्जनों उदाहरण हैं कि राजकीय सेवा का परित्याग कर अनेक प्रसिद्ध विद्वानों ने डी. ए. वी कॉलेजों में काम करना अपनी प्रतिष्ठा एवं रुचि के अधिक अनुरूप समझा। वस्तुतः महाजन साहब के व्यक्तित्व में

हम सतत् गतिशीलता एवं दिव्य आभा के दर्शन करते हैं और ऐसे प्रभावपूर्ण आलोक का हमारे बीच से उठ जाना एक दुर्दान्त दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है।

समाजवादी आन्दोलन के प्राण डॉ० राममनोहर लोहिया, जिन्हें कि संविद मंत्रिमण्डलों का सूत्रधार और साहित्यकारों एवं कवियों का प्रेरणादाता कहा जाता रहा है, हमारे बीच एक ऐसी पावन परम्परा छोड़ गये हैं, जो हमें भावी संकट में क्रियाशील बनाए रहेगी। उनके व्यक्तित्व की प्रखरता एवं ओजस्विता हमारे संसदीय जीवन की एक विलक्षण घटना थी। उनका आंकड़ा-विज्ञान और अर्थशास्त्र का ज्ञान अनेकों के लिये एक सुखद विस्मय प्रमाणित हुआ, किन्तु उनका मानवीय स्नेह और कर्मठता सदैव हमारा पथ प्रशस्त करती रहेगी। श्री दीनदयाल उपाध्याय अपने सौजन्य एवं निर्भ्रान्त व्यक्तित्व को लेकर सदैव याद किए जायेंगे। जिन परिस्थितियों में उनकी हत्या हुई, वह हमारी सुरक्षा-व्यवस्था के लिये एक चुनौती है। इसी प्रकार अमेरिका में डॉ० मार्टिन लूथर किंग की राजनीतिक हत्या हमारे रोंगटे खड़े कर देती है और हम बर्नार्ड शॉ की तरह सोचने लगते हैं कि अति सज्जन होना कभी-कभी बड़ा खतरनाक होता है। उसके लिये बड़ा मूल्य भी चुकाना पड़ता है। महात्मा गाँधी,, प्रेजीडेण्ट कैनेडी, दीनदयालु उपाध्याय और मार्टिन लूथर किंग की शहादत हमें यह स्मरण कराती है कि हमारी तथाकथित सभ्यता के मध्य कहीं बर्बरता का अंश भी विद्यमान है। शान्ति के ऐसे सेनानियों का निधन सभी गम्भीर लोगों को जहां एक ओर विषाद में डुबो देता है। वहां हम इस बात के लिये भी जागरूक होते है कि जब तक इस प्रकार की बर्बरता से हम परित्राण नहीं पा लेते, तब तक हमारी महान् विभूतियों का जीवन सुरक्षित नहीं है। मेजर यूरी गागरिन जिन्हें प्रथम अंतरिक्ष यात्री होने का सौभाग्य प्राप्त है और जो सोवियत वैमानिक की दृढ़ता एवं कर्तव्य-परायणता के प्रतीक हैं, उन्हें भी एक आकस्मिक विमान-दुर्घटना का शिकार होना पड़ा। गागरिन महत्वाकांक्षी तरुण एवं तरुणियों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय थे और उनकी गौरवशाली परम्परा सदैव अविस्मरणीय रहेगी। इन सभी दिवंगत आत्माओं के प्रति मनीषी-परिवार सादर नमन् करता है और उनके अधूरे छोड़े हुए कार्य को पूर्ण करने का संकल्प।

११. दिवंगत साहित्यकार :

१९६७-६८ का सत्र साहित्यकार जगत के लिए वस्तुत: एक अभिशापित वर्ष प्रमाणित हुआ, क्योंकि इस वर्ष हिन्दी के अनेक मूर्धन्य साहित्यकार हमसे विदा हो गए! छायावाद के बुद्धिपक्ष एवं भावपक्ष के प्रतिष्ठापक सर्व श्री नंददुलारे वाजपेयी एवं शान्तिप्रिय द्विवेदी आकस्मिक रूप से हमसे मृत्यु के ठंडे हाथों द्वारा छीन लिए गए! वाजपेयी जी का व्यक्तित्व अपने शिखरत्व को प्राप्त हुआ ही था कि वे हमारे बीच नहीं रहे। सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष के रूप में उन्होंने एक गौरवशाली परम्परा की स्थापना की। वे विक्रम विश्वविद्यालय के उपकुलपति अधिक समय तक नहीं रह सके। उपकुलपति की प्रशासनिक परिधि में परिसीमित रहने पर भी उनका साहित्यकार जागरूक रहा-प्रमाण है : 'धर्मयुग' में प्रकाशित उनकी नई कविता संबंधी लेखमाला! हिन्दी का यह मूर्धन्य समीक्षक नवलेखन की उपेक्षा अधिक समय तक न कर सका उन्होंने उसके स्वस्थ एवं अस्वस्थ रूप का बड़ा ही संतुलित विवेचन हमारे सामने प्रस्तुत किया। शान्तिप्रिय द्विवेदी का सम्पूर्ण जीवन साहित्य के प्रति समर्पित रहा। यह एकाकी साहित्यकार जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों से आजीवन लड़ता रहा, किन्तु उनके सौन्दर्य-लोक पर सामाजिक जीवन की कलुषित छाया कभी भी न पड़ पाई। वे आजीवन साहित्य के अद्यतन रूप के उपासक रहे और उन्होंने बड़ी ही निष्ठा के साथ भावात्मक शैली में छायावाद से लगाकर अब तक के साहित्य का प्रभाववादी विवेचन किया। डॉ० श्रीकृष्णलाल एक सफल अध्यापक एवं श्रेष्ठ समीक्षक तो थे ही, किन्तु उनका 'मानव' भी अपनी सहृदयता के कारण अपने आसपास के जीवन में बड़ा लोकप्रिय रहा। हास्य-रस की दो विभूतियां-डॉ० हरिशंकर शर्मा एवं बेढब बनारसी-हँसते-हँसते ही परलोक की यात्रा को चल पड़े! ये दोनों विभूतियां आर्य जगत् की देन हैं। जो लोग आर्य समाज की सिद्धान्तवादिता एवं कठोरता की शिकायत करते हैं,

(शेष पृष्ठ ४९ पर देखें)

काँटा, जो निकल गया !

गिरधर बासवानी

[सत्य केवल वही नहीं होता, जिसे हमने दूसरों में देखा। सत्य वह भी है, जो हमने किया, कर रहे हैं या करने जा रहे हैं। इसे देखो, फिर निर्णय करो-दोनों में कितना सत्य है ? दोनों के मध्य के तीसरे सत्य को पकड़ने का प्रयास करो, यही वास्तविक सत्य है। लेखक की प्रस्तुत कहानी की मूल संवेदना यही है। —छात्र सम्पादक]

"बेटा मुझे तो बहुत चिंता होगई है ।"

"क्यों माँ ?" बेटे का मुँह पुस्तक में ही था ।

"तुझे शायद शीला पसंद नहीं ....'

बेटे ने मुँह से पुस्तक हटाई ।

माँ ने आगे कहा, "मुझे परोक्ष रूप से कह गई है कि मेरे पत्र घर में कोई नहीं खोलता, तो भी तुमने उसे पत्र नहीं लिखा, उसने तेरा फोटो मांगा तो वह भी तुमने उसे नहीं भेजा ।"

"इसीलिये तुम समझती हो कि वह मुझे पसंद नहीं ?" बेटे के मुँह पर मुस्कराहट दौड़ आयी ।

"तो क्या समझूं ? शायद तुमने इसलिये हां भर दी हो कि वह हम सबको, और विशेषतया मुझे पसंद थी ।"

"इसीलिये मैंने हाँ कही ? पागल हूं ? शादी मेरी है और पसंद भी मेरी है ।"

"तो फिर तुम उसे पत्र क्यों नहीं लिखते ?"

"पत्र लिखना क्या आवश्यक है ?"

"क्यों नहीं ? औरत होते हुए भी वह तुझे कह गई, तो भी ...... "

"पहले वह लिखेगी तो उत्तर दे दूंगा ।"

"वह कैसे पहले लिखेगी ?"

"तो मैं पहले क्यों लिखूं ?"

माँ का मुंह उतर गया । भारी आवाज में कहा, "बेटा, कहो तो मैं यह रिश्ता तोड़ दूं । फिर मुझे न कहना कि मां ! तुमने ही मुझे फंसाया ...."

"तुमने मुझे फंसाया नहीं, मुझे तो शीला ने ही फंसाया है । उसे देखकर ही तो मैंने "हां" कही थी ।"

मां का चेहरा खिल उठा, बोली... ..."लेकिन मुझे तुम्हारी इस प्रवृत्ति का मतलब समझ में नहीं आता । जवान हो, तुम्हारा मन तो कहता होगा चिट्ठी-पत्री लिखने के लिये ?"

"मन तो कहता है पर उसका कहना नहीं मानूंगा ।"

"क्यों, ऐसा करने में हर्ज ही क्या है ? तुम्हारी सगाई हो चुकी है ।"

"बहुत बड़ा हर्ज है मां । उसका दिमाग चढ़ जायगा, समझेगी कि मैं उसकी कठपुतली हूं ।"

"ऐसा क्यों समझने लगी, वह तो खुश होगी कि मुझे बहुत प्यार करता है । बेचारी खुश हो तो अच्छा ही है ।"

"नहीं, इस तरह उसे खुश नहीं करना है ।"

"बेटा", मां का चेहरा फिर फीका पड़ गया ।

"मां मुझे पसंद है, बहुत पसंद है—लेकिन इस बात के लिये मुझे मजबूर न करो । मैं उसे बहुत चाहूंगा, प्यार करुंगा, परंतु दिखाऊंगा नहीं कि मैं उस पर मरता हूं ।"

"क्यों बेटा ? उसे तो इससे संतोष मिलेगा ।"

"नहीं मां, यहां उसे आने दो, फिर देखना-कितना संतोष उसे मिलता है !"

"मुझे तो तेरी ये बातें समझ में ही नहीं आती ।"

"अच्छा आओ, मैं तुम्हें समझाऊं । लड़की को अगर पहले से ही बहुत प्यार दिया गया, अभी से ही उस पर बलिदान होना शुरू कर दिया, तो वह चुलबुली हो जाएगी । प्यार करेगी, परंतु इज्जत नहीं । मुझे इज्जत भी चाहिये । यह आवश्यक है कि पत्नी इज्जत भी करे और थोड़ा भय भी माने ।"

"बेटा, तेरे ऐसे विचार कैसे हो गए ?"

"मां, तुम बुरा क्यों मानती हो ? क्या मैं उसे अपने से कम समझते हुए खुश नहीं रखूंगा, मैं उसे दिल से तो इतना प्यार करुंगा कि दिल की सम्पूर्ण दौलत उसके कदमों में होगी, लेकिन दिखावा नहीं करुंगा ।"

"बेटा, तुम तो पागल हो गए हो ।"

"पागल नहीं, मुझे मालूम है कि लड़कियाँ हमारे प्यार का नाजायज़ फायदा उठाती हैं । हमारे प्यार व समानता की

भावना की कदर नहीं करती हैं—वह भले ही यह समझे कि मेरा पति कठोर है, बेपरवाह है, लेकिन मैं हूं तो नहीं।"
"बेटा तेरी बातें सुनकर तो मेरा जी घबराने लगता है।"
"मेरे भी सिर में दर्द होने लगता है, अच्छा छोड़ो इन बातों को।"
"छोड़ कैसे, मुझे तो डर लगता है कि तुम्हारे इन विचारों के कारण वह आकर दुखी न हो।"
"किसी को दुखी रखना, हमारे खानदान के किसी लड़के के खून में नहीं है मां!"
"मैं जानती हूं।"
"मां, तुम गलत समझ रही हो, मेरा मतलब यह नहीं कि पुरुष अपनी स्त्री को भूत-प्रेत की तरह डराए, लेकिन उससे थोड़ा गुस्सा होना आवश्यक है। किसी भी समय वह अपनी पत्नी से आंख के इशारों पर काम करा सके, वरना घर का काम काज ठीक न चलेगा।"
"कहां से ये पागलपन की बातें तुमने सीखीं?"
"आसमान से नहीं सीखीं, मां!"
"तो फिर कहां से सीखीं?"
"जीवन से, ज़िन्दगी से।"
"किसके जीवन से?" मां की आवाज में दुःख झनझना उठा
"मां, अब मुझे आगे कुछ कहने के लिये मजबूर न करो।"
"नहीं, तुम्हें सब-कुछ बताना ही होगा!"
"जो कुछ मेरे मन में है, अगर बाहर न निकले तो अच्छा ही है।"
"तुम्हें बताना ही होगा!" मां ने जिद्द की।
बेटे ने सिर झुका लिया, "मां, तुम बहुत अच्छी हो। तुमने पिता जी के लिये सब-कुछ किया है—उन्हें हर तरह के सुख, और मन की शांति प्राप्त हुई। लेकिन, कभी २ जब तुम गुस्सा करती हो, पिताजी को कितना अपमानित करती हो, पिताजी मन से पीड़ित हो जाते हैं, पर तुमसे कुछ कह नहीं पाते, कहना नहीं चाहते। उन्होंने तुम पर आज तक गुस्सा नहीं किया, परन्तु तुमने उन्हें हम छोटे बच्चों के सामने इज्जत नहीं दी। मैं देखता हूं कि पिताजी के मन में यह एक कांटा चुभता रहा है।"

बेटे ने सिर उठाकर मां की तरफ देखा, मां का सिर झुका हुआ था और आँखों में आँसू थे। रूँधे गले से कहा—

"बेटा, तुमने जो देखा, सीखा। तुमने इतना सब कहकर मुझे आभास करा दिया कि मैं कहाँ थी, और आज यह भी जान गई कि मेरी ज़िन्दगी का एक निर्बल पक्ष भी है, उसे सुधार लूंगी, लेकिन तूने जो देख-देख कर सीखा, वह फिर भी अधूरा है। तू कहेगा-कैसे? तो देख, तेरे पिताजी के मन में जो एक कांटा चुभता रहा है, वह तो आज निकल जाएगा, पर तू, जिसके साथ ज़िन्दगी बिताने जा रहा है, उसके मन में पहले से ही कांटा चुभा रहा है। यह कांटा अगर चुभ गया, तो तब तक कसकता रहेगा, जब तक तेरे बेटे ऐसी ही बात कहकर इसे न निकालेंगे। बेटे, एक कांटा निकल गया, दूसरा कांटा मत चुभो ·······"

"मां, तुम सचमुच माँ हो। मुझे माफ करदो! सचमुच, मैंने देखकर जो सीखा, अधूरा था। मैं ऐसा नहीं करूंगा कि शीला के मन में कोई कांटा चुभे, और ज़िन्दगी भर चुभता रहे। मैं ····· मैं शीला को आज ही पत्र लिख दूंगा, मां ···" कहकर बेटा माँ के पाँवों पर झुका और माँ ने 'मेरे बेटे' कहकर बेटे को सीने से लगा लिया। ●●

उपन्यास के मूल्यांकन में तात्विक अनुशीलन की अनिवार्यता (पूर्वपक्ष)

भंवरलाल पारीक, एम.ए. (पूर्वार्द्ध)

[भंवरलाल पारीक का, विभिन्न विद्वानों के उद्धरणों से जड़ा हुआ यह निवन्ध, हमारी विचार-गोष्ठी में चर्चित विषय का पूर्वपक्ष है। लेखक में जहाँ मार्मिकता को परिपक्वता है, वहीं उसमें कुछ मताग्रह भी है, जो कि कहीं-कहीं 'पूर्वग्रह' का रूप भी लेता दृष्टिगोचर होता है। फिर भी अपने पक्ष को सुदृढ़ रूप में रखने का लेखक में जो कौशल है, उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। पूर्वपक्ष के प्रतिपादक में जो गुण होने चाहिएँ, वे इस निवन्ध में प्रचुर मात्रा में हैं। इसी विषय पर 'उत्तरपक्ष' प्रस्तुत कर रहे हैं श्री रमेश 'मित्र', जिसे कि आप विचार-मंच के उत्तरार्द्ध में पढ़ेंगे। --सम्पादक]

परम्परा से निगड़ित वैयक्तिकता और सामाजिकता जब स्वच्छन्दता की ओर अग्रसर होती है, तब साहित्य में गद्यरूपी स्रोतस्विनी स्रोतों की सीमा से बाहर आकर नया आकार धारण करती है। जागरूक और गतिशील भावों के समायोजन की शक्ति पद्य की विधा में समाहित नहीं हो पाती है, तब भावानुवर्तिनी गद्य की विधा का विकास अंगड़ाई लेता है। मनुष्य की अपरिमित विकसित प्रवृत्तियाँ गद्य के द्वारा अभिव्यक्ति का पथ सुगम बनाती हैं। उपन्यास के उद्भव के मूल में इन्हीं प्रवृत्तियों का पुट है। कुछेक मनीषी उपन्यास से ही वास्तविक गद्य की उत्पत्ति मानते हैं। लाक्षणिक ग्रन्थों के अकट-विकट बन्धनों से परिवेष्टित होकर ही साहित्यकारों ने साहित्य की इस विधा को अपनाया होगा। डॉ० रामअवध द्विवेदी ने लिखा है: 'सच तो यह है कि उपन्यास एक ऐसा साहित्यरूप है, जो बन्धनों की उपेक्षा करने में ही अपनी सार्थकता मानता है, क्योंकि वह निर्बन्ध जीवन के आधार पर ही निर्मित हुआ है।' 'दि मेकिंग ऑफ लिटरेचर' में स्कॉट जेम्स ने लिखा है कि उपन्यास के जीवन में, प्रारम्भ से ही आज तक उपन्यासकार ने अपनी स्वतंत्रता का उपयोग, इस कथा-साहित्य में किया है। शिवनारायण श्रीवास्तव ने 'हिन्दी उपन्यास' में लिखा है कि लेखक को इतनी अधिक स्वतंत्रता और किसी साहित्य-रूप में उपलब्ध नहीं, यह साहित्य का सबसे अधिक उच्छृंखल और अस्थिर रूप है।

इन विभिन्न विद्वानों की विचारधाराओं से ऐसा लगता है कि साहित्य की अन्य विधाओं से उपन्यास में लेखक को अधिक स्वतंत्रता मिलती है, परन्तु इनमें स्पष्टतः यह उल्लेख नहीं है कि यह पूर्णतः निर्बन्ध है। इनमें तत्वों की प्रभुता और प्रमुखता स्वीकार नहीं की गई है, परन्तु तत्वों की पूर्णतः अवहेलना भी नहीं की गई है। उपन्यास को तत्वों में बांधना इन्हें अभीष्ट नहीं है, परन्तु उसे पूर्णतः निर्बन्ध भी नहीं देखना चाहते हैं। उपन्यास का प्रारंभ भले ही स्वच्छन्द प्रवृत्ति की देन हो, परन्तु इसके प्रचार, प्रसार और व्यापकत्व के लिये, तत्वों की उपादेयता कम नहीं है। जो विद्वान् उपन्यास को साहित्य का उच्छृंखल और अस्थिर रूप मानते हैं, मैं समझता हूँ, उनकी यह विचारधारा अस्थिर है। जो उपन्यास इन विचारों से प्रभावित होकर लिखे जाते हैं, वे कुछ समय के लिये ही अपनी स्थिरता रख सकते हैं, अर्थात् वे भी पाठकों की नज़र में अस्थिर ही हो जाते हैं।

उपन्यास आधुनिक युग में साहित्य के सभी अंगों में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। वास्तव में उपन्यासकार अपनी कृति में किसी विशिष्ट दृष्टिकोण का सहारा लेता है और उसके आधार पर मानव-जीवन का मूल्याङ्कन करते हुए अपने जीवन-दर्शन का स्पष्टीकरण करता है। मानव-जीवन के वैविध्यपूर्ण पहलुओं को वह निहारता है और परखता है। जीवन-दर्शन के अभाव में उपन्यास कुल मिला कर, एक अशक्त कृति कही जाती है। उपन्यास के प्रचार-प्रसार के साथ उसके उत्तरदायित्व में भी वृद्धि हुई है। आधुनिक पाठक उपन्यास से केवल मनोरंजन की ही अपेक्षा नहीं करता है, वरन् जीवन-दर्शन को भी वांछनीय समझता है। प्रतिभा और श्रुताभ्यासरहित कलाकार युक्तियुक्त रूप से जीवन-दर्शन की मांग का पूर्णतः निर्वाह नहीं कर सकता। इस निकषपट्टिका पर खरे उतरने वाले उपन्यास ही ख्यात हो सकते हैं, प्रसिद्धि पा सकते हैं। सस्ते और उद्देश्यहीन उपन्यास, हिन्दी साहित्य की विस्तृत धरा पर कालक्रमेण उर्वरक का काम करते हैं। जीवन-दर्शन के

उद्देश्य से अतिदूर रहने वाले उपन्यास अल्पकालीन चमत्कार के उत्पादक भले ही बन जायें, परन्तु उनका अस्तित्व शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और वे साहित्यिक दृष्टि से निरर्थक हो जाते हैं।

उपन्यास के तत्वों के अनुशीलन के संबंध में गुलाबराय जी ने लिखा है :

"उपन्यास साहित्य के वर्तमान विकास ने इन तत्वों की परम्परा बहुत अंश में निरर्थक-सी करदी है। अब न तो कथानक में व्यवस्था और शृंखला का पहला-सा मान रहा है और न चरित्रचित्रण में संगति और संबद्धता का आग्रह है। मनुष्य क्षणिक दशाओं (Moods)) का समूह-सा दिखाई देता है और अवचेतना का द्वार खुल जाने से मानसिक जीवन और भी संकुल हो गया है। वह व्यवस्था में अव्यवस्था उत्पन्न कर देता है। यह विधा नितान्त नियमहीन तो नहीं है, किन्तु एक गतिशील वस्तु को नियमों में बांधना कठिन है। पिछले नियमों और तत्वों में बहुत कुछ सार है। विद्यार्थियों को उनका जानना आवश्यक है, किन्तु उन सबको पत्थर की लकीर समझ लेना या उनके आंशिक अभाव के कारण किसी कथाकृति को निंद्य ठहरा देना कलाकार के साथ अन्याय होगा। नये कलाकारों को सहृदयतापूर्वक समझने की आवश्यकता है।"

गुलाबराय जी का दृष्टिकोण समन्वयवादी है। उपन्यास में तत्वों के महत्व को गौण भी नहीं किया है और तत्वों के अत्यल्प अभाव में किसी कृति को दूषणयुक्त भी इन्होंने नहीं माना है। इस विधा में तत्वों को नगण्य नहीं ठहरा सकते।

देवराज उपाध्याय ने उपन्यास की गतिशीलता और तत्वों पर आलोचना के प्रसंग में लिखा है :

"इसमें इतना लचीलापन है, इस पर किसी तरह का बंधन नहीं। यह कोई भी रूप किसी भी समय धारण कर सकता है। इसमें एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की कहानी रह सकती है, या एक घन्टे की या एक मिनिट की मदोन्मत्त साहसिकों की कथा रह सकती है, या पूरा समाज भी इसकी परिधि में आसकता है, या कथा का नितान्त प्रभाव भी हो तो कोई परवाह नहीं, जीवित मनुष्यों की कथा हो सकती है, कब्र से उठकर यहाँ मनुष्य आ सकते हैं, भड़कीले वर्णन हो सकते हैं, रेखाचित्र हो सकते हैं या केवल अर्द्ध-स्फुट कथनों के द्वारा पाठकों की अनुमान-वृत्ति या अर्थापत्ति के सहारे सब कुछ छोड़ा जा सकता है। सर्वसमर्थ सर्वदा ईश्वर समकक्ष और झरोखे पर बैठकर सबका मुजरा लेने वाले लेखकों की शैली अपनाई जा सकती है, उत्तम पुरुषात्मक 'मैं' वाली शैली से भी काम लिया जा सकता है।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि विषय तथा शैली आदि के अनुसार उसके विविध रूप हो सकते हैं, अतः इसकी व्यापकता सीमाहीन है। साहित्य की यह विधा बहुरूपिये की भाँति बहुरूपा है। इसमें उपाध्याय जी ने कथावस्तु के वैविध्य और भाषाशैली के विविध रूपों की समाविष्टि का समर्थन किया है। इन्होंने इसमें कथावस्तु के नितान्त अभाव को भी ग्राह्य बताया है। लेखक उपन्यास के लिखने में पूर्ण स्वतन्त्र है, परन्तु पाठक और आलोचक भी कृति को ग्राह्याग्राह्य समझने में परतंत्र नहीं है। यदि लेखक उपन्यास के लिखने में तत्वों की अवहेलना कर सकते हैं, तो पाठक भी तत्वों के अभाव में अरुचिपूर्ण कृति की अवहेलना कर सकते हैं। जो नवलेखनवादी विद्वान् लेखकों को तत्व, की निरावलंबता की शिक्षा देता है, उसका आशय नये लेखकों को मात्र प्रोत्साहन देना है, न कि सही अर्थ में तत्वों की अवहेलना करना। साथ ही यह विचारधारा एकांगी और अपूर्ण है। इसमें लेखकों को प्रोत्साहन दिया जाता है, परन्तु पाठकों और आलोचकों का ध्यान नहीं रखा जाता। तत्वों की उपेक्षा करने की विचारधारा उन मदोन्मत्त विचारकों की हो सकती है, जो अपने आपको नवलेखनवादियों का अग्रदूत कहलाने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। उन सारी विचारधाराओं से, जो तत्वों की उपन्यास में उपेक्षा करना चाहती है, यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उपन्यास में विपय-वैविध्य विस्तृत स्थान पा सकता है। तत्व-रहित उपन्यास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह संभव है कि अन्य तत्वों की गौणता के साथ किसी एक तत्व-विशेष की ही उसमें प्रधानता हो जाय। तत्वों के होते हुये भी किसी कृति-विशेष

में उन्हें स्वीकार नहीं करना भी तत्व-विरोधियों के लिये आत्मतुष्टि हो सकती है, जो वास्तविकता से परे है। कथा-वस्तु, चरित्रचित्रण आदि तत्वों का रूप भले ही बदल जाय, परन्तु उनकी आत्मा के अभाव की परिकल्पनामात्र आत्म-प्रवंचना है। हाथ-पैर पटकने को ही तैरना समझने वाले बालकों की तरह, तत्वरहित उपन्यास को साहित्य में उत्कृष्ट रूप देने वाले संशयशील कृतिकार साहित्य-निधि में कूदकर, अपने आपको, तत्वों का सहारा न लेने के कारण डूबो लेते हैं और अपना अस्तित्व संदेह में डाल लेते हैं।

उपन्यास के उद्देश्य पर विचार करते हुए डॉ० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है :

"उपन्यासों में मुख्यतः यही दिखलाया जाता है कि पुरुषों और स्त्रियों के विचारमात्र और पारस्परिक सम्बन्ध कैसे हैं, वे किन-किन कारणों अथवा प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कैसे-कैसे कार्य करते हैं, अपने प्रयत्नों में वे किस प्रकार सफल अथवा विफल होते हैं और इन सबके फल-स्वरूप उनमें कैसे-कैसे मनोविकार आदि उत्पन्न होते हैं। उपन्यास-लेखक का जीवन के किसी एक अथवा अनेक अंगों के साथ बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, इसलिए किसी-न-किसी रूप में यह प्रकट करना उसका कर्तव्य हो जाता है कि जीवन के साधारण और असाधारण सभी व्यापारों का उस पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा है। कुछ विशेष सिद्धान्तों अथवा विचारों के प्रतिपादन के उद्देश्य से तो बहुत ही कम उपन्यास लिखे जाते हैं, पर सभी उपन्यासों में कुछ-न-कुछ विशेष विचार अथवा सिद्धान्त आप-से-आप आ जाते हैं।"

डॉ० श्यामसुन्दरदास की यह विचारावली उपन्यास के उद्देश्य के सम्बन्ध में है, परन्तु इससे यह भी स्पष्ट होता है कि निरुद्देश्य कोई उपन्यास नहीं लिखा जाता है और यदि उपन्यास सोद्देश्य लिखा जाता है, तो उपन्यास की समीक्षा में उपन्यास के उद्देश्य-तत्व के महत्व का प्रतिपादन होता है। विभिन्न विद्वानों द्वारा उपन्यास में तत्वों को स्वीकार करना ही तत्वों के महत्व का निदर्शन है। उपन्यास में तत्वों का समावेश होना चाहिये, परन्तु उस सीमा तक जिसमें उपन्यास की गुरुता और उपयोगिता में वृद्धि कर सके।

अधिकतर विद्वान् इस मत के अनुयायी हैं कि कथानक के अभाव में उपन्यास की रचना भी संदिग्ध हो जाती है। डॉ० भगीरथ मिश्र लिखते हैं :

"यद्यपि आधुनिक काल में कथानक का महत्व कम समझा जाता है, पर यह उपन्यास का मूल है। उपन्यास में व्याप्त कुतूहल का तत्व कथानक के सहारे ही विकास पाता है। उपन्यास का समग्र रूप कथानक के ढाँचे पर ही विकसित होता है। कथानक का चुनाव और निर्माण उपन्यासकार की प्रमुख विजय है और लेखन के कौशल का संकेत इसमें मिल जाता है। कथानक के समस्त अंगों का सुन्दर संगठन, घटनाओं का समुचित विन्यास उपन्यास को सुन्दर बनाने के लिये आवश्यक होता है। यह धारणा भ्रान्त है कि उपन्यास में कथानक का कोई महत्व नहीं, या सामान्य कथानक को भी वर्णन-कौशल द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है, क्योंकि वर्णन-कौशल के साथ कथानक की उत्कृष्टता भी मिल जाय, तो मणिकांचनयोग होगा।" मिश्रजी ने उपन्यास में कथानक की अनिवार्यता बताई है। सामान्यतः जिस उपन्यास का कथानक जितना सुगठित और ठोस होता है, वह उतना ही महत्वपूर्ण बन जाता है। यह भी आवश्यक नहीं है कि ठोस कथानक का समावेश उपन्यास को श्रेष्ठ या सफल बनाता ही है। कथानक की परिपक्वता के अभाव में श्रेष्ठ कृति का सर्जन हो ही नहीं सकता, यह भी आवश्यक नहीं है।

यह निर्विवाद तथ्य है कि उपन्यास के तत्वों के अभाव में कृति में सौष्ठव और माधुर्य आ ही नहीं सकता। जाने-अनजाने में तत्वों को उपन्यास में स्थान देना ही होगा। कथानक-रहित उपन्यास निरर्थक है। अन्यान्य सामान्य गुणों के कारण कहीं २ श्लाघ्यतम तत्वों का व्यतिक्रम श्लाघनीय हो सकता है, परन्तु उनकी सर्वत्र उपेक्षा पाठकों के लिये उपन्यासकार की कृति की उपेक्षा

परिवर्तन को स्वीकार करना पड़ता है, करना चाहिए अन्यथा सर्जक और उसका सृजन दोनों ही पिछड़ जाएंगे और परिणाम यह होगा कि उपन्यास अथवा सम्बन्धित विधा का विकास रुक जाएगा।

जब सृजन परम्परागत आधार पर होता है, तो यह आवश्यक हो जाता है कि उसका अनुशीलन अथवा उसकी समीक्षा का आधार भी परम्परागत ही हो। समीक्षा का यह ढंग परम्परागत-शास्त्रीय-ढंग होगा, जिस पर कि आधुनिक सर्जक को आपत्ति है। समीक्षा के प्राचीन ढंग को प्र.ध्यापकीय-समीक्षा-पद्धति कह कर इसकी आलोचना की गई है, और कहा गया है-इसमें कुछ निश्चित नुस्खों और नपे-तुले सिद्धान्तों के आधार पर आलोच्य उपन्यास की आलोचना की जाती है और परम्परागत तात्विक-विशेषताओं की उपेक्षा की जाती है जो आज के उपन्यास में नहीं होतीं। इसका परिणाम यह होता है कि आज के उपन्यासकार के व्यक्तित्व का वह रूप, जिसे वह उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा होता है, करना चाहता है, समीक्षक और समीक्षा के द्वारा विकृत तो हो ही जाता है, कभी-कभी नष्ट तक भी हो जाता है। आधुनिक उपन्यासकारों (कहानीकार आदि भी) की मान्यता है कि उपन्यास ऐसे भी हो सकते हैं, जिनमें उपन्यासकार किसी एक तत्व-विशेष का ही मूल रूप में चरम-उत्कर्ष दिखाना चाहता हो और इस प्रक्रिया में वह जानबूझ कर अन्य तत्वों का गौणतम रूप में समावेश करे अथवा उन्हें बिलकुल ही छोड़ दे। यदि ऐसी स्थिति में प्राचीन परम्परागत समीक्षापद्धति का प्रयोग किया जाता है, तो यह निश्चित ही उपन्यासकार के साथ अन्याय होगा। ऐसी स्थिति में उपन्यासकार के एक तत्व के चरम-उत्कर्ष को उतना सराहा नहीं जाएगा, जितना कि अन्य तत्वों के गौण हो जाने के कारण उसे कटुतम आलोचना का शिकार बनाया जाएगा। इसे अन्याय ही कहा जा सकता है, जो सर्जक के साथ हो सकता है। वस्तुतः कोई भी परम्परा न तो केवल अच्छाइयों का ही भण्डार हो सकती है और न केवल बुराइयों का। फिर, किसी परम्परा से सदा-सदा के लिए बंध जाना कहाँ तक उचित है, जबकि परम्परा का परित्याग कर आगे बढने पर प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता हो। यह नहीं है कि एक निश्चित परम्परा का निरन्तर पालन किए जाना भारतीय वाङ्मय की ही विशेषता रही है बल्कि, बहुत अधिक आधुनिक कहे जाने वाले तथाकथित पाश्चात्य राष्ट्रों में भी परम्पराओं का अस्तित्व रहा है और है। किन्तु, यह भारतीय वाङ्मय की ही विशेषता है कि यहाँ बिना उपयोगिता का विचार किए, परम्पराओं का अनवरत रूप से पालन किया जाता है, जबकि पाश्चात्य राष्ट्र प्रायः अनुपयोगी परम्पराओं का बहिष्कार करने में नहीं हिचकिचाते। यही कारण है कि पश्चिमी देशों में साहित्य की सभी विधाएँ समय के साथ-साथ आधुनिकता को अपनाती चली गई और काफी आगे निकल गई, किन्तु भारतीय साहित्यकार ने उसे बहुत देर से देखा और फिर अभिनव प्रयोग किए गए। काव्य में छायावादी, रहस्यवादी और रोमान्टिक कविता, पश्चिम में बहुत पहले ही नवीन-पथ का अनुसरण करने लगी थी, जबकि भारत में यही सब काफी विलम्ब से हुआ। यह स्वाभाविक ही है कि जब किसी नई दिशा में नए प्रयोग किए जाते हैं, परम्परागत मार्ग का परित्याग किया जाता है, तो उसका विरोध होता है, आलोचना होती है। किन्तु, आलोचना के भय से अपनी-प्रगति के मार्ग को स्वयं ही अवरुद्ध कर देना, बुद्धिमत्ता नहीं है। हिन्दी कविता में 'छायावाद' को पदार्पण करते समय कम संघर्ष नहीं करना पड़ा था, और यही कारण है कि वह अपने पाँव जमा सका और आज तो हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद का अपना महत्व है। किन्तु, इससे यह भी प्रमाणित ही गया कि नई, 'टेकनीक' का जो भी प्रयोग किया जाए, उसमें प्राण होने चाहिए और होनी चाहिए शक्ति, तभी वह अपना स्थान बनाने में समर्थ हो सकता है।

हिन्दी उपन्यास में भी अभिनव प्रयोग किये जाने लगे हैं। 'नई-कविता', 'नव-गीत' और 'नई-कहानी के पश्चात अब 'नव-उपन्यास' की स्थिति भी बल पकड़ने लगी है और उपन्यास के क्षेत्र में इस नवीनता के दर्शन अनेक रूपों में होने लगे हैं। अब उपन्यासकार गिने-चुने तत्वों के आधार पर उपन्यास की रचना नहीं करता, अपितु इस पक्ष को गौण बनाते हुए किसी एक विशेषता का प्रतिस्थापन
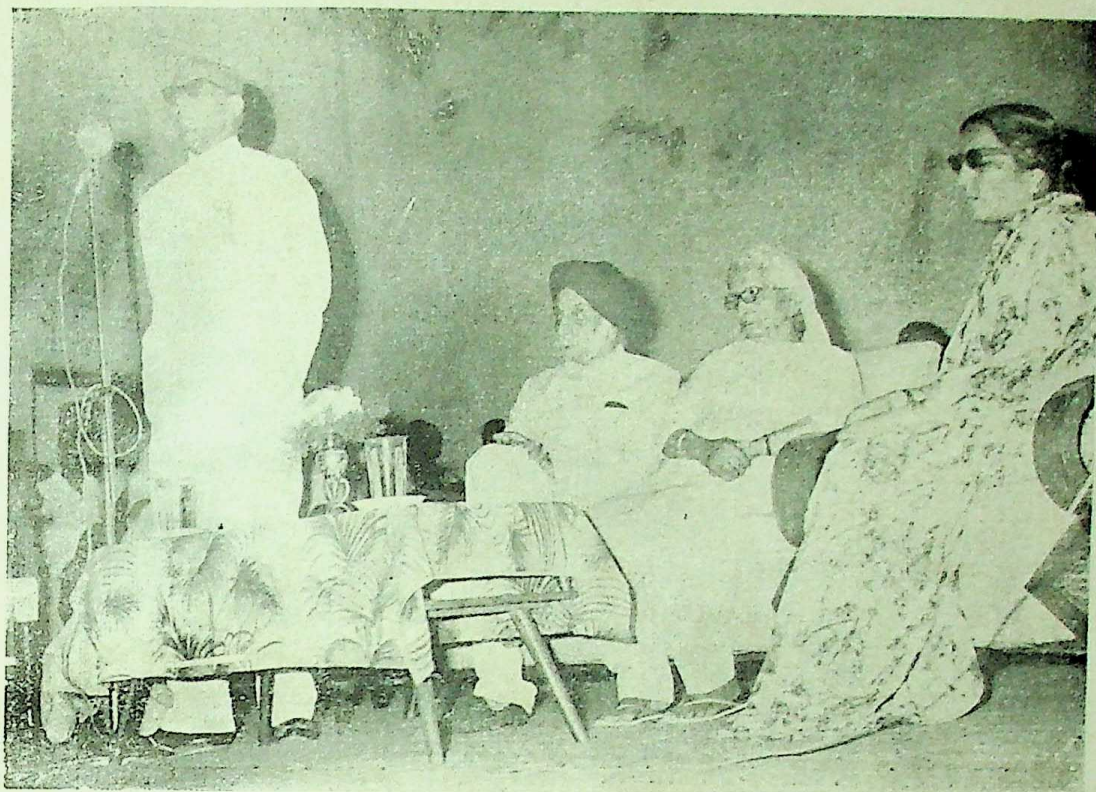
आचार्य वाल्ले, राजस्थान के राज्यपाल सरदार हुकुमसिंह जी का स्वागत करते हुए

राजस्थान के कृषि मंत्री श्री शोभाराम जी

कॉलेज के नवीन पुस्तकालय का निरीक्षण करते हुए

छात्र संघ के उद्घाटन अवसर पर श्री शिवचरण माथुर, शिक्षा मंत्री राजस्थान

प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता कृष्णगोपाल गर्ग

वार्षिक क्रीड़ा दिवस पर सलामी लेते हुए

आनन्दसिंह झाला, बी. ए. (अन्तिम-वर्ष)

कॉलेज क्रीड़ा-नायक (Gen. Captain)
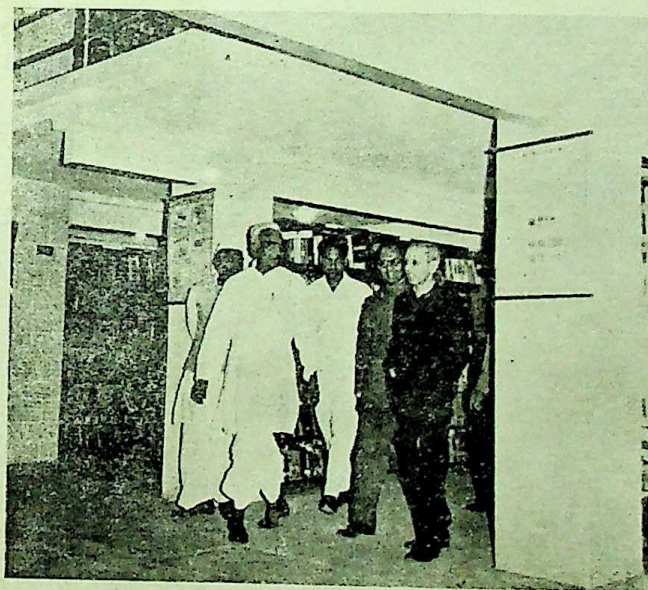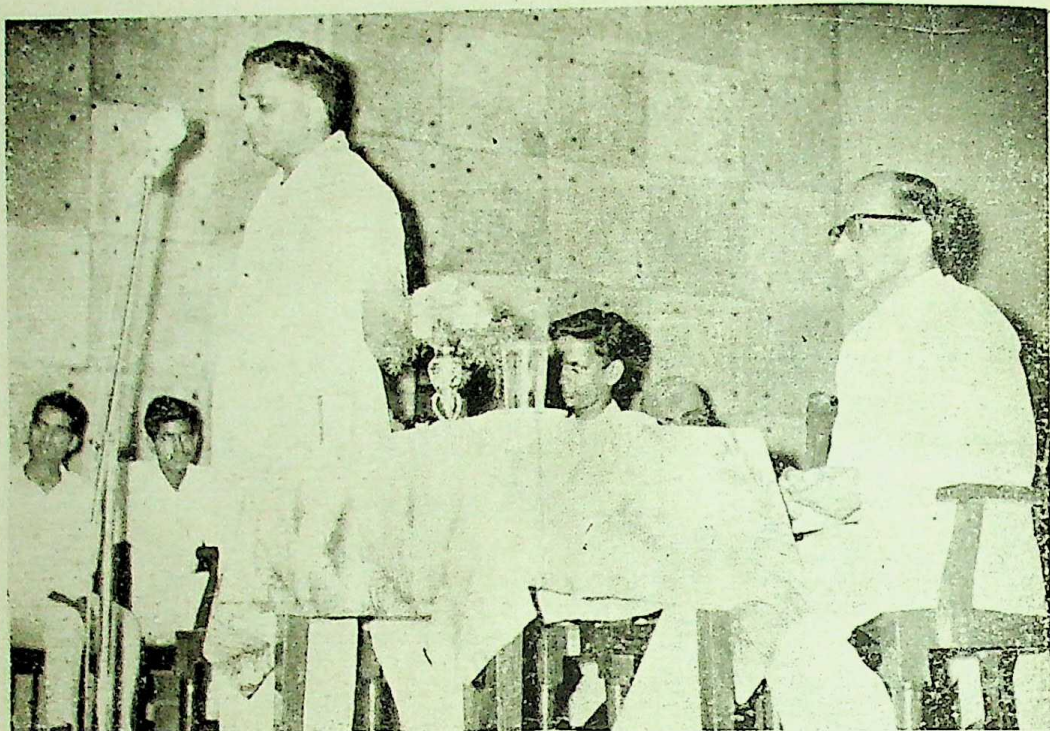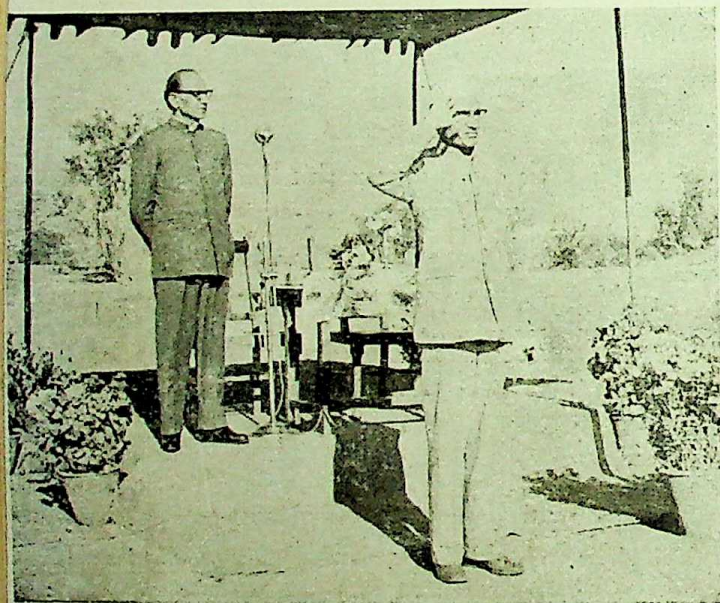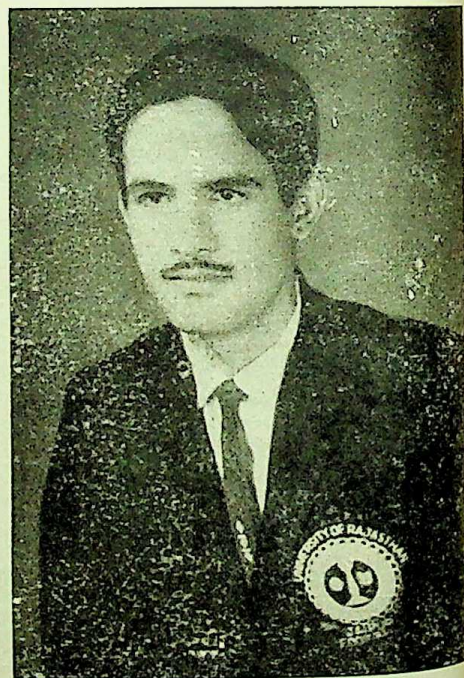
करने लगा है। एक समय था, जबकि उपन्यास में कथा-तत्व की दृष्टि से अनेक विशेषताओं की मांग की पूर्ति की जाती थी, किन्तु आज यह बात नहीं है। उपन्यासकार यदि चाहे तो कथा की क्रमबद्धता और घटनाओं की संगति की अवहेलना भी कर सकता है। इसी प्रकार, यदि वह चाहे, तो मात्र चरित्र-चित्रण या पात्र या संवाद या उद्देश्य या देशकाल और वातावरण या भाषा-शैली में से किसी एक या दो अथवा अधिक की पूर्णतः अवहेलना करता हुआ अन्य शेष तत्वों का ही निरूपण कर सकता है। ऐसी स्थिति में, ऐसे उपन्यास का अनुशीलन इस जानकारी के पश्चात करना ही अपेक्षित है कि उपन्यासकार अथवा उपन्यास का अभीष्ट क्या है। यहाँ समक्षिक द्वारा प्रत्येक दृष्टि से उपन्यास में कुछ खोजने का प्रयास करना और उसके न मिलने पर उपन्यास की कमियों का ही गीत गाना, व्यर्थ की बकवास के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

और जब यह स्वीकार किया जा सकता है कि उपन्यास-शिल्प की दृष्टि से उपन्यासकार का अभीष्ट ही मुख्य है, तो यह भी स्वीकार करना होगा कि उपन्यास की समीक्षा के पुराने सिद्धान्त को त्याग दिया जाना चाहिए और ऐसे सिद्धान्त और मानदण्ड निर्धारित किए जाने चाहिए, जो उपन्यास में आधुनिकता की दृष्टि से समीक्षा के उपयुक्त हों। जब विधा नवीन दिशा का अनुसरण कर रही है, तो उसकी समीक्षा के लिए भी नए सिद्धान्तों की आवश्यकता है। आज, तत्वों के आधार पर उपन्यास का निरूपण समयानुकूल बात नहीं रह गई है, क्योंकि "उपन्यास साहित्य के वर्तमान विकास ने इन तत्वों की परम्परा बहुत कुछ अंश में निरर्थक-सी कर दी है। अब न तो कथानक में व्यवस्था और शृंखला का पहला-सा मान रहा है और न चरित्र-चित्रण में संगति और सम्बद्धता का आग्रह है। मनुष्य क्षणिक मनोदशाओं का समूह-सा दिखाई देता है और अवचेतना का द्वार खुल जाने से मानसिक जीवन और भी संकुल हो गया है। यह व्यवस्था में अव्यवस्था उत्पन्न कर देता है। यह विधा नितान्त नियम हीन तो नहीं है, किन्तु इन सबको पत्थर की लकीर समझ लेना या उनके आंशिक अभाव के कारण किसी कलाकृति को निंद्य ठहरा देना कलाकार के साथ अन्याय है। नए कलाकारों को सहृदयतापूर्वक समझने की आवश्यकता है।" (गुलाबराय: 'काव्य के रूप')

उपर्युक्त पंक्तियों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि इनके लेखक की स्पष्ट मान्यता है—पुरानी व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए हम बाध्य नहीं हैं, क्योंकि उसकी आवश्यकता ही नहीं है। समय, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार किसी भी विधा में मोड़ आना स्वाभाविक है और इसीलिए पुराने तत्वों का महत्व भी घट गया है। अब उपन्यास में कथानक की पहले-सी कोई खास-आवश्यकता नहीं है और कथानक अगर मिलता भी है, तो वह शृंखलाबद्ध या क्रमबद्ध रूप में नहीं। जैनेन्द्र के 'परख' से लेकर 'मुक्ति-बोध' तक, सारे उपन्यास ऐसे ही हैं। इसी प्रकार अब चरित्र-चित्रण का औचित्य भी मान्य नहीं है कि वह विश्वसनीय हो ही; क्योंकि प्रत्येक पात्र को चरित्र-चित्रण की दृष्टि से एक ही साँचे में नहीं ढाला जा सकता और इसी प्रकार अविश्वसनीय चरित्र-चित्रण का बहिष्कार भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि चरित्र की भिन्नता स्वाभाविक है, भले ही हम उस पर इसीलिए विश्वास न कर सकें कि हमने हमारे जीवन में वैसा कुछ विचित्र-सा नहीं देखा है। राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' उपन्यास, चरित्र-चित्रण की नवीनता की दृष्टि से, निस्सन्देह एक श्रेष्ठ रचना है, जबकि उसमें कुछ औपन्यासिक-तत्व गौण हैं। मनोविज्ञान के प्रयोग के सन्दर्भ में चारित्रिक विविधता स्वाभाविक है। यह स्थिति तो तब है, जबकि व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपन्यास की सीमा में अभी पूर्ण प्रवेश नहीं हो पाया है। जब ऐसा होगा, तब उपन्यास में तत्वों का अस्तित्व अवश्य ही खतरे में पड़ जाएगा। अतः प्रयास यही होना चाहिए कि ऐसे उपन्यासों का तत्वों के अभाव में अनुशीलन अथवा उनकी समीक्षा के लिए एक नया दृष्टिकोण अपनाया जाए, जो किसी पूर्वाग्रह से प्रभावित न हो। दूसरे शब्दों में, नव-उपन्यास की समीक्षा के सन्दर्भ में उपन्यासकार के अभीष्ट को ही सामने रखा जाना चाहिए।

ऊपर हमने गुलाबराय जी की कुछ पंक्तियां उद्धृत की हैं, जिन्हें देखने से ऐसा लगता है कि इन पंक्तियों का

लेखक इस क्षेत्र में भी प्राचीन और नवीन के मध्य समन्वय का पक्षपाती है, दोनों के बीच से एक नए पथ की कल्पना करता है। तभी तो वह एक ओर कहता है : 'मनुष्य क्षणिक मनोदशाओं का समूह-सा बन गया है ...... अवचेतना का द्वार खुल जाने से मानसिक जीवन और भी संकुल होगया है.........एक गतिशील वस्तु को नियमों में बांधना कठिन है।' और दूसरी ओर तत्वों के महत्व को भी यह कहकर स्वीकार करता है : 'पिछले नियमों और तत्वों में बहुत कुछ सार है।' एक ओर इन तत्वों को 'पत्थर की लकीर' न मानने की बात कहता है, तो दूसरी ओर इन तत्वों के 'आंशिक अभाव के कारण किसी कलाकृति को निंद्य ठहरा देना कलाकार के साथ अन्याय है और 'नये कलाकारों को सहृदयतापूर्वक समझने की आवश्यकता है' की बात कहता है। अपने जीवन की संध्या में गुलाबराय जी ने 'नवीन' को देखा और इसलिए इसके अस्तित्व-व्यक्तित्व को स्वीकारा, किन्तु जिस प्राचीन के सम्पर्क में उनके जीवन का प्रभात और दोपहरी बीते, उसके प्रति अपने मोह को वे दबा नहीं पाए। यदि, जीवन की संध्या में देखा गया 'नवीन' जीवन के प्रभात में ही दिख जाता, और दोपहरी भी उसी के सान्निध्य में बीती होती, तो गुलाबराय जी संभवतः ऐसा नहीं लिखते। यह कौन कहता है कि पुरानी परम्परा के गुणों और अच्छाइयों की उपेक्षा कर दी जाए, उसकी अवहेलना की जाए? अच्छाई तो सदैव अच्छाई ही है और इसीलिए वह पुरानी भी नहीं पड़ती, नवीन ही रहती है और नवीन का नवीन से विरोध कैसा! हमारा आशय तो यही है कि महज प्राचीन के प्रति मोह के कारण नवीन की गति और प्रगति में बाधा नहीं डालनी चाहिए, अनुपयोगी प्राचीन का बहिष्कार कर नवीन के प्रति सहृदय होना चाहिए और ऐसा करने पर उपयोगी प्राचीन का गौरव भी बना रहेगा, और नवीन का विकास भी नहीं रुकेगा। कहना न होगा कि इसी मार्ग का अनुसरण कर हिन्दी गद्य की उपन्यास-विद्या, गौरवपूर्ण इतिहास के साथ, निरन्तर आगे बढ़ रही है, विकास कर रही है। स्मरण रहे—बिना उपयोगिता का विचार किए—स्थायी सिद्धान्तों के आधार पर सच्ची समीक्षा नहीं की जा सकती और अहितकर एवं अन्यायपूर्ण होने कारण की भी नहीं जानी चाहिए। समय और परिथिस्थति की आवश्यकता के अनुकुल दृष्टिकोण अपना कर ही कलाकार के साथ न्याय किया जा सकता है।

मेरा हृदय तो एक छोटा सा सरोवर है,
उस सरोवर में विश्व कमल खिला है,
उस विश्वकमल पर अपनी आभा से अवतरित हो कर मुझे
पूरे प्रकाश में अपने दर्शन दे।
मुझे तो तेरी चाह है,
जैसे अन्धेरी रात के अंतस्तल में प्रकाश की प्रार्थना छिपी
रहती है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

वत्सला टूट गई !

प्रो० लक्ष्मीकान्त शर्मा

['वत्सला टूट गई।' एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो कि आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है, और जिसमें कि डॉ० नीहार, डोरोथी और वत्सला की कहानी है। देश की समसामयिक परिस्थितियाँ जिसमें बीच-बीच में झांकती हैं और इस प्रकार उपन्यास को एक विस्तृत चित्रफलक प्रदान करती हैं। व्यष्टि और समष्टि किसी की भी उपेक्षा नहीं है इसमें; एक सन्तुलन, एक राष्ट्रीय विचारधारा उपन्यास की मांसपेशियों में ऐसी गति का संचार करती है कि जिसमें हम संघर्ष-संकुल भारत की नियति के दर्शन तो करते ही हैं, पर भविष्य के लिए भी इसमें एक अरुणिम आशावाद है, जो अनास्था को नहीं जगाता, अपितु व्यक्ति मानस में आस्था का रक्त-संचार करता है। प्रस्तुत अवतरण में आप पढ़ेंगे कर्तव्य और प्रणय के झूले में डोलते डॉक्टर-मन के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी, चीनी आक्रमण के समय उसकी कर्तव्यपरायण निष्ठा की कहानी, जिसने संपूर्ण राष्ट्र में एक अपराजेय शक्ति का उदय किया था। संपादक]

कर्तव्य और प्रणय के झूले में डोलता डॉक्टर का मन !

अगले दिन प्रातः ही मुझे दो तार मिले—एक डा० चटर्जी का था और दूसरा वत्सला मुखर्जी का। डा० चटर्जी ने मेरे स्वदेश लौटने पर प्रसन्नता प्रकट की थी और सूचित किया था कि क्या मैं तेजपुर के मिलिटरी अस्पताल में काम करना पसंद करूंगा। वत्सला ने लिखा था कि वह उत्सुकतापूर्वक उसके आने की बाट जोह रही है और कि, वह बम्बई से विमान द्वारा तुरन्त ही कलकते पहुंच जाय। इन दो तारों ने मेरे मानसिक संतुलन को भंग कर दिया था और मैं सोच रहा था कि कुछ दिन मुक्त रहकर साँस लूंगा, पर कर्तव्य का आवाहन मेरे विश्राम से कहीं अधिक महत्व का है। हिमालय की बर्फीली चोटियों पर चीन का आक्रमण हो गया था और समस्त राष्ट्र एक तनाव की स्थिति में था। उस आकस्मिक आक्रमण ने जैसे राष्ट्र का बुद्धिबल अत्यंत प्रखर कर दिया था और सभी राजनीतिक-दल अपने मतभेदों को भुलाकर राष्ट्रीयता की पांत में आकर खड़े हो गये थे। संपूर्ण राष्ट्र में एक असाधारण चेतना की लहर हिमालय से कन्या कुमारी तक और पूर्व से पश्चिम तक दौड़ गई थी। युवक और युवतियां स्वदेश-भक्ति से प्रेरित खूंखार दुश्मन से मुकाबला करने के लिये कृत-संकल्प थे। उनकी मुट्ठियां बंध गई थीं और वे प्रतिशोध की आग में धधक रहे थे। शत्रु के अपवित्र चरणों को नेफा और लद्दाख के मोर्चे पर देखकर हमारे जवानों की आंखों में खून उतर आया था ! चप्पे-चप्पे जमीन के लिए विकट संग्राम हो रहा था। असंख्य घायल फौजी अस्पतालों में दिन-रात आ रहे थे। ऐसी स्थिति में मेरा विवेक अपने मार्ग को चुनने के लिये विवश था और मैंने डा० चटर्जी को तुरंत तार द्वारा सूचित किया कि उनका प्रस्ताव मुझे स्वीकार है।

पारिवारिक सदस्यों ने जब इस संवाद को सुना, तो एक खलबली-सी मच गई। अभी माँ पूरी तरह से अपने पुत्र को निहार भी न पाई थी कि यह कैसा पैगाम आ पहुंचा ! अभी बहन अपनी शोखियों से भैया को नचा भी न पाई थी कि यह कर्तव्य का कैसा बिगुल बज गया ! प्रेम भरे दो दिल अंगड़ाइयां ही ले रहे थे कि शबनम शोले बन गये और उनकी आग ऐसी भभकी कि माँ की मिन्नत, बहन की जिद्द और प्रेमिका के मदमाते नयन, इन सबको भुलाकर मैं कलकते की ओर दौड़ पड़ा। वत्सला से मिलते हुये तेजपुर में अपने कर्तव्यसूत्र को संभालने के लिये।

विमान के यात्रियों में बड़ी सरगर्म चर्चा थी, भारत और चीन के सीमा-विवाद को लेकर यह समझा जा रहा था कि यह मात्र सीमा-विवाद नहीं है, अपितु लोकतंत्र पर तानाशाही का आक्रमण था। जीओ और जीने दो ! की भूमि पर आज लुटेरे की आँख लगी थी। सह-अस्तित्व और विश्व-बन्धुत्व का राग अलापने वाले नेता अनायास ही गंभीर हो गये थे और सोच रहे थे कि कहीं हमारी नीति में कोई बुनियादी त्रुटि तो नहीं है। स्वाधीनता के बाद एक प्रकार की मानसिक शिथिलता जो आ गई थी, वह अब कटने लगी। देश के चिंतन और कर्म में एक

नुकीलापन आ गया था, पर हमारे नेताओं ने विवेक को नहीं खोया था। उन्होंने राष्ट्र का आवाहन किया और राष्ट्र ने भी उसका समुचित उत्तर दिया। गहनों के अंबार लग गये, सोना पिघल कर बंदूक और तोप की धाँय-धाँय में बदल गया और तिजोरियों की संपत्ति, मध्यवर्ग की सीमित आय और मेहनतकश जनता की खून और पसीने की कमाई बचत के आंदोलन में जुट गई। करोड़ों रूपये इकट्ठे हो गये, और सैनिक उत्पादन के कारखाने दिन और रात बड़ी मुस्तैदी से धुँआ उगलने लगे।

यह समय युद्ध था और राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक एक अपराजेय सैनिक था। संपूर्ण राष्ट्र एक सैनिक-शिविर में परिवर्तित हो गया, कोमल अंगुलियां स्वेटर बुनती रहीं, मजबूत इरादे फालतू गर्म कपड़े इकट्ठे करते रहे और समस्त राष्ट्र का तन, मन और धन जैसे शत्रु से पंजा लड़ाने के लिये उद्यत हो गया। नौजवानों का खून उबल रहा था, युवतियों के संकल्प दृढ़ हो रहे थे, माताओं, बहनों और पत्नियों के दिल फौलाद हो रहे थे कि चोर हमारे आंगन में घुस आया है और हमें अपनी सारी ताकत के साथ उसे धकेल देना है। ऐसे ही कुछ विचार और भावनायें मेरे दिल और दिमाग से टकराते रहे कि मेरा हवाई जहाज दमदम हवाई अड्डे पर पहुंच गया। आहिस्ता-आहिस्ता विमान नीचे उतरा और विमान के पिंजरे में बंद प्राणी अपने-अपने परिचितों एवं संबन्धियों को ढूंढ़ने लगे। मैं भी उस विराट् जनसागर में किसी परिचित आकृति को खोज ही रहा था कि पीछे से मेरे कंधे पर मि० मुखर्जी का स्नेह-भरा हाथ पड़ा। सामने वत्सला नमस्कार की मुद्रा में मुस्करा रही थी।

पारस्परिक कुशल मंगल के आदान-प्रदान के बाद हम मुखर्जी के बंगले पर पहुंच गये थे और सारे रास्ते भर वत्सला मुझसे विदेश के बारे में नानाप्रकार के प्रश्न करती रही। यूरोप का जीवन मुझे कैसा लगा, मेडिकल शिक्षा की स्थिति वहां कैसी है, अंग्रेज युवतियों का जीवन किस प्रकार का है, इंगलैंड के लोग और अन्य यूरोपीय राष्ट्र चीन के आक्रमण के बारे में क्या सोचते हैं-आदि-आदि अनेकानेक प्रश्न उसके जिज्ञासु अधरों से फूट पड़े।

बातों ही बातों में मैंने उसे बताया कि मेरी नवनियुक्ति तेजपुर के फौजी अस्पताल में हो गई है और इसी कारण कलकत्ते अधिक न ठहर सकूंगा। इस पर वत्सला के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं और उसके होश फाख्ता हो गये। क्या सोचा था, क्या हो गया!

"तो आप ड्यूटी ज्वाइन करने आये हैं, न कि मुझसे मिलने"– उलाहने के स्वर में वत्सला ने कहा।

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। आप दोनों में विरोध क्यों देखती हैं? क्या ये दोनों भिन्न प्रतीत होती हुई क्रियायें एक नहीं हो सकतीं"?– मैं अनायास पूछ बैठा, जिज्ञासु और प्रगयशीला वत्सला से।

"हाँ, आपके विचार सही हैं और मैं सोचती हूं कि आपको यथाशीघ्र अपनी ड्यूटी जॉयन कर लेनी चाहिये। मुझसे कहीं अधिक आवश्यकता है, आपकी, उन घायलों को, बहादुर सैनिकों को, जो मोर्चे से लहू-लुहान होकर लौटे हैं। वत्सला सब्र करना जानती है, उसका दिल फौलाद का है। वह डॉक्टर को उसके मरीजों से अधिक विलग नहीं रख सकती!"

तभी आकर टोका मिसेज मुखर्जी ने:

"अरे, पहले खाना तो खालो, बातें फिर भी हो सकती हैं। साहब, आप लोगों का डायनिंग-टेबल पर इंतजार कर रहे हैं।"

"हाँ माता जी, हम अभी आते हैं।"

डायनिंग-टेबल पर मिस्टर मुखर्जी आज का ताजा अखबार पढ़ रहे थे। मेरे पहुंचते ही गंभीर होकर बोले:

"साला चीनी बढ़ता ही आ रहा है। उसकी निगाहें आसाम के तेल-क्षेत्रों पर है। हमारे मुल्क की तैयारी कम है। कैसे काम चलेगा?"

"हाँ, आपका सोचना ठीक है। हम पर आकस्मिक

आक्रमण जो हुआ है। ऐसी स्थिति में आक्रांता सुरक्षित स्थिति में रहता है। उसके पास खोने को तो कुछ होता नहीं, उसे तो पाना-ही-पाना है।"–मैंने मुखर्जी के मनोबल को सुदृढ़ करने की दृष्टि से कहा।

"पर अपन लोग ढ़ीला है, अहिंसा का राग अलापता है और दोस्ती का पैगाम भेजता है। यह गलत है।"–उन्होंने राष्ट्र के सुरक्षा-प्रयासों की तीव्र आलोचना करते हुये कहा।

"मुखर्जी साहब, आप ठीक फरमा रहें हैं। पर अब हमें दुश्मन के हाथ लग गये हैं! भारत के बूढ़े शरीर में भी जवानी का खून खौलने लगा है। सब ठीक हो जायगा।"–मैंने देश के भविष्य को हस्तामलकवत् देखते हुये कहा।

"अरे फिर वही बहस, आप लोग खाना क्यों नहीं खाते!" श्रीमती मुखर्जी ने हमारी बातों में हस्तक्षेप करते हुये कहा।"

"हां, हम खाने को तो भुला ही बैठे थे। आओ नीहार, दुश्मन को हराने के लिये डटकर खाना खायें।"

"हां, अब हमारा हर काम एक ही लक्ष्य को दृष्टि में रखकर होना चाहिये और वह है स्वदेश की रक्षा और लुटेरे दुश्मन को मातृभूमि से खदेड़ना और ऐसी मार लगाना कि वह भूलकर भी इधर मुंह न करे!"

बातों-ही-बातों में मैंने मुखर्जी को तेजपुर अस्पताल की अपनी नई नौकरी के बारे में बताया। इस पर उन्होंने मेरी पीठ ठोंकी और आशीर्वाद दिया कि मैं अपने मिशन में कामयाब होऊं।

अब मैं मुखर्जी के स्टडी-रूम में बैठा हूं और उनकी और वत्सला की पसंद की पुस्तकें और पत्रिकायें देख ही रहा था कि फुदकती मैना-सी आ गई वत्सला।

"कहिये डाक्टर, इतने लंबे अर्से की गैरहाजिरी में आपने हमें भी कभी याद किया!"—चपलतापूर्वक यह प्रश्न पूछकर वत्सला मेरे नयनों में झांकने लगी, जैसे उत्तर को शब्द रूप में न पाकर, उसे भावरूप में ही प्राप्त कर लेना चाहती हो।

"अरे, तुम सब लोगों की याद ही तो मुझे यहां खींच लाई है।"–मैंने वत्सला को आश्वस्त करने की दृष्टि से कहा।

... पर प्रश्न लरजते रहे, और उत्तर लड़खड़ाते रहे। व्यष्टि की तृषा, समष्टि के माध्यम से अपने आपको व्यक्त करती रही, तभी अचानक बोल पड़ी वत्सला—

"डाक्टर, जी चाहता है कि मेरी भी ड्यूटी तेजपुर अस्पताल में लग जाय, अपने मुल्क के लिये जो शूरवीर घायल हुये हैं, उनकी मरहम-पट्टी करना कितना सुखद होगा और कितना प्रेरणाकारी होगा आपका सान्निध्य!"

"समय आने पर यह भी हो जायगा। प्रतीक्षा करो, प्रतीक्षा का फल मीठा होता है!"

"प्रतीक्षा ही तो करती रही हूँ, इन लंबे-लंबे दो-ढ़ाई साल से, पर जब प्रतीक्षा सार्थक हुई, तो भारत-माता का आमंत्रण मिल गया! कैसी खुशनसीब और बदनसीब हूं मैं!"

"खुशनसीब और बदनसीब एक साथ ही कैसे?"

"खुशनसीब तो इसलिये कि आपकी ड्यूटी लेह के अस्पताल में न लगकर तेजपुर में लगी है और बदनसीब इसलिए कि अभी पूरी तरह मिल भी न पाये थे कि बिछुड़ चले!"

"...तो वत्सला मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करुंगा, घायलों की सेवा-सुश्रूषा और सैनिकों की मरहम-पट्टी में। आओगी न, वचन दो!"

तब एक फौलादी इकरार हुआ और शस्यश्यामला वसुधंरा पर एक अमांगलिक उल्कापात भी!

अब कैसे बततलाऊं मैं इस वत्सला को कि मैं किसी का हो चुका हूँ। यह नादान लड़की कैसी भोली है कि ढ़ाई साल तक मेरी प्रतीक्षा करती रही, कितनी धैर्यशालिनी है यह! आठ-सौ दिन और रातें चक्कर काटते रहे, पर इसका धीरज नहीं चुका! किसी के स्नेह का दीपक प्रणय की तन्हाई में अंगड़ाइयां लेता रहा, पर यह परवाना शमा पर ही नाचता रहा! उफ, प्रणय तुम कैसे अजीब बाजीगर हो? दोनों हाथों से कंदुक-क्रीड़ा करते हो, किसी का भाग्य उछलता है, तो किसी का लुंठित होता है!

.........पर तुम्हें इससे क्या, तुम तो वज्र के समान कठोर और कुसुम के समान कोमल हो न! प्रणय, आँख-मिचौनी का खेल क्यों खेलता है?

तब स्पष्ट है कि वत्सला के प्रति मेरे मन में प्रणय

भाव नहीं है, पर कोमल भावना तो है, इसी ने तो इस बेचारी को भ्रमित किया है। मैंने सदा वत्सला को अपना मित्र समझा, प्रेरणाकारी दिव्य प्रसून समझा, पर यह तितली के-से रंगीन पंख लेकर मेरे भाग्याकाश पर क्यों मंडराना चाहती है? क्या यह नारी-हृदय को छलना है, रूप की मृग-मरीचिका है और बसंत के मादक स्वप्नों की अलसाई हुई मुस्कान है?...... अपने अन्तर्मन में झांकता हूं और मन की गहन उपत्यकाओं में वत्सला को केवल एक मित्र के रूप में देखता हूं, एक ऐसे मित्र के रूप में, जिसके साहचर्य की सुरभि मन-प्राणों में बस गई है! फिर यह भ्रांति क्यों? क्या इस आवरण को मुझे ही हटाना होगा, पर बहरहाल मैं खुद उलझ गया हूं, क्या उलझा हुआ व्यक्ति किसी को सही रास्ते पर ला सकता है?......तभी कर्तव्य की रणभेरी बजती है और मैं पल्ला झाड़कर खड़ा हो जाता हूँ, अपने आपको घायलों से घिरा हुआ पाता हूँ, उनकी मर्मभेदी पुकार मन को तार-तार कर देती है! इन्हीं का उपचार करना मेरे जीवन का पवित्र संकल्प है और इन्हीं को एक समर्थ सैनिक का स्वास्थ्य प्रदान करना मेरे जीवन का अंतिम लक्ष्य है, ताकि ये लड़ सकें और दुश्मन को खदेड़ सकें। उनकी नापाक छाया, हमारी पवित्र भूमि पर न पड़ पाये, यही तो मेरा ईप्सित है। 'नीहार! तुम प्रणय की कोमल रंगीनियों के लिए नहीं बने हो, तुम्हारा जीवन किसी महत्तर कर्तव्य के प्रति समर्पित है!'........कोई उपचेतना के तट पर बुदबुदाता है।.......और मैं कोल्हू के बैल को तरह, उसी पथ पर बढ़ चलता हूँ।

× × ×

तेजपुर का सैनिक अस्पताल प्रातःकाल के ८ बजे मैं अपनी ड्यूटी पर पहुंच गया, मेरे सहकारी ने सर्जीकल वार्ड में घूम-घूम कर हर मरीज की हिस्ट्री-शीट् से मुझे परिचित करवाया। मैं हर केस के विस्तार में गया, उनकी पेचीदगियों को समझा और अपने करणीय को निश्चित किया। मन-ही-मन उस विशाल हॉल में लेटे हुये सैनिकों को प्रणाम करता हूं, आखिर ये मातृ-भूमि के संरक्षक हैं, उन्होंने अपने प्राणों की बलि देकर स्वदेश की प्रतिष्ठा की रक्षा की है। ऐसे शूरवीरों के प्रति मन श्रद्धा से अभिभूत हो जाता है और मैं एक मेजर के बेड के पास जाकर कुछ पूछताछ करता हूं।

मुझे बताया गया था कि मेजर ने बड़े हौसले के साथ चीनियों के प्रबल आक्रमण का सामना किया था। वे अपनी ब्रिगेड से अलग होकर एक अनजाने प्रदेश में हतचेतन अवस्था में कई सप्ताह पड़े रहे और उनके साथियों ने उन्हें बड़ी मुश्किल से ढूंढ़ पाया। अब भी वे निद्रावस्था में बड़बड़ाते हैं, सावधान, आगे ..... बढ़ ...... निशाना ......सा .. ....ध!' आदि-आदि।

मेजर साहब के मन में युद्ध की घटनाएँ इतनी घनीभूत हो गई थीं कि वे स्वप्नावस्था में भी युद्ध के मैदान में अपनी बीमारी का पल्ला झाड़कर पहुंच जाते थे। भारतमाता के इस सुपुत्र से बात करने के लिहाज से मैं उनके बेड के पास जाता हूं और पूछता हूं:

"मेजर साहब, कैसी तबियत है?"

"डाक्टर, अब तो काफी ठीक हो चला हूं, पर मन में अब भी तोपों और मशीन-गनों की धाँयं-धाँयं समाई हुई है, अब तो आपसे एक ही अर्ज है कि जल्द-से-जल्द मुझे चंगा कर दें, ताकि मोर्चे पर जा सकूँ।" – मेजर साहब ने अपने बेड से कुछ उचकते हुये कहा।

मैं स्टूल लेकर उनके पास बैठ जाता हूं और उनसे पूछता हूँ:

"लड़ाई के आपके तजुर्बे कैसे रहे? आप अभी इतने ठीक नहीं हुये हैं कि आपको काम पर भेजा जा सके। आपकी ख्वाहिश पूरी हो, इसके लिये पुरजोर कोशिश कर रहा हूं।"

"बस मत पूछो डाक्टर साहब, तबियत पंख लगाकर उड़ना चाहती है, नसों में खून खौल रहा है, उस दुश्मन के दांत खट्टे करने के लिये। साले बड़े पाजी होते हैं। अपने भाइयों की लाशों को रौंदते हुये लहरदार ढंग से धावा बोलते हैं। जिन्दगी की तो उनके यहाँ कोई कीमत नहीं"! "हां, सो तो ठीक ही है, पर इस की क्या वजह कि हमारे जवानों के इतने दिलेर होने पर भी हमें कई मोर्चों पर मुंह की खानी पड़ी!" "डाक्टर साहब, हमारी सरकार तो अहिंसा की थी ना, हमारी तैयारी ही कहाँ थी, दिलेर जवान तो थे, पर उसके पास नये ढंग के हथियार कहां थे? वे इतना ही तो कर सकते थे कि अपने आपको आग में झोंक दें और मुझे खुशी है कि

मेरे नौजवान मौत से कतराये नहीं, उन्होंने वो पंजा मिलाया कि साला दुश्मन भी याद करेगा!" "आप बजा फरमा रहे हैं जनाब, अब हमारी सरकार ने गलती महसूस की है और फौजी कारखाने नये-से-नये हथियार तैयार कर रहे हैं। बाहरी मुल्कों की भी हमें मदद मिल रही है।"

"इस बार यदि दुश्मन ने अपना नापाक चेहरा हमें दिखाया, तो सालों को भून देंगे और चटनी बना देंगे सुसरों की!" "हाँ, मेजर साहब आपके इरादे तो फौलादी हैं और मैं शुक्रगुजार हूं उस खुदा का, जिसने वतन के लिये ऐसे सपूत पैदा किये हैं!"

"डाक्टर साहब, अफसोस यही है कि मेरे साथी मुझे उठाकर यहाँ ले आये, नहीं तो मेरी तमन्ना यही थी कि आखिरी दम तक उन लुटेरों को चकनाचूर करता रहूँ! पता नहीं, कैसे बर्फ में बेहोश होकर दब गया था, और मेरे जवान मुझे यहां ले आये! जब होश आया, तो मैं हैरान था। कहाँ आ गया हूँ मैं?" "मेजर साहब, आप ठीक होकर दुश्मन के दांत खट्टे करें, इसी लिये तो आपको यहां लाया गया है ......"

मैं अपना वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि मेरे सहकारी ने आकर सूचना दी कि एक एमरजेंसी केस आया है और मुझे ऑपरेशन-टेबल पर चलकर उसकी गोलियां निकालनी हैं और उसके घावों पर ड्रेसिंग करनी है।

सुनने के साथ ही मैं उठ खड़ा हुआ और दौड़ा-दौड़ा ऑपरेशन-थियेटर में गया। एक जवान ऑपरेशन-टेबुल पर बेसुध पड़ा था, उसे प्राथमिक सहायता तो मिल चुकी थी, किन्तु गोलियाँ बड़ी बुरी तरह से उसकी पसलियों में समा गई थीं। मैंने आनन-फानन में उसकी पसलियों पर क्रॉस का चिन्ह अंकित करते हुये गोलियां निकाली, तब सहकारी डाक्टर ने तुरन्त ही उसकी मरहम-पट्टी की। गोलियां निकालने के कुछ समय बाद ही उसे होश आया और वह अस्फुट रूप में कुछ बुदबुदा रहा था, ऐसा लगता था कि उस अचेतनावस्था में भी उसकी बंदूक तनी है और वह दनादन गोलियाँ दाग रहा है! मैंने उसकी आंखों पर की पट्टी हटाई और पूछा– "क्यों जवान, अब कैसे हो? बंदूक के फायर अब भी जारी हैं! देखते नहीं, यह अस्पताल है और यहां तुम्हें इलाज के लिये लाया गया है।"

"........मैं कहां ...... हूं .... बंदूक .... कहां .... है, मोर्चा .... कहां है?"–वह बड़बड़ाया।

"जनाब, आप लड़ाई के मैदान में नहीं हैं, अस्पताल में हैं अस्पताल में।" मैंने अपने मुंह को उसके कान के पास ले जाकर कहा। सहकारी को संकेत किया कि इसे तुरन्त ही सर्जीकल-वार्ड में बेड नम्बर ८१ पर पहुंचा दिया जाय।

इसी तरह के 'केसेज' से उलझते-उलझते दोपहरी के ३ बज गये। न खाने की सुध थी, न पीने की, आराम तो कल्पना से बाहर था, क्योंकि मैं उसे हराम समझता था! बंगले पर गया, तो बेचारी मिसरानी रसोई के आगे बैठी ऊंघ रही थी। वह १ बजे से ही मेरा इन्तजार कर रही थी। हालाँकि मैंने उसे कह रखा था कि जब १-१।२ बजे तक न आ पाऊं, तो वह खाना बनाकर रख दिया करे, पर वह है कि मुझे ताजा खाना ही खिलाना चाहती है!

खाना खाते-खाते ४ बज गये, ५ बजे मुझे फिर अस्पताल पहुंचना है। सोफे पर लेटे-लेटे कुछ चिकित्सा-विज्ञान की पत्रिकाएँ देखता हूं, पढ़ते-पढ़ते ऊंघ जाता हूं, तभी फोन की घंटी टनटना उठती है। फिर कोई 'एमरजेंसी केस', आ गया है। जल्दी-जल्दी कपड़े पहनता हूं और ऑपरेशन-थियेटर पहुंच जाता हूं। दिन-रात यही क्रम चलता है। गोलियां ...... मरहम-पट्टी .... रिसते हुए घाव ...... फ्रैक्चर .... कटे हुए अंग ...... ऑपरेशन ...... सर्जीकल इन्स्ट्रूमेंटस् सहकारी डाक्टर और नर्सें ...... फौजी जवान, मेजर, कप्तान और ब्रिगेडियर .... इन्हीं में, मैं साँस लेता हूं, और यही मेरी दुनियां है! अविराम, अक्लान्त श्रम, कर्तव्य की रणभेरी कानों में निरन्तर गूंजती रहती है .... किसी मीठे स्वप्न की भांति डौरोथी .... और वत्सला आती हैं और नयनों में स्फूर्ति एवं चिर-स्फूर्ति का अंजन आँज कर चली जाती हैं। फिर काम में जुट जाता हूं, अपने आपको एक सैनिक समझता हूं, घायलों के मोर्चे पर डटा हुआ हूं! .... पर हाथ में बन्दूक नहीं है, है केवल ऑपरेशन के औजार, मरहम-पट्टियां और दवाइयाँ! यही तो जीवन है, लगता है समग्र देश एक शिविर है, समस्त देशवासी अपराजेय अनन्त सैनिक!

'गालियों का युग !'

गोपाल भार्गव, तृतीय वर्ष कृषि

[आज के दैनन्दिन आचरण में, एक ओर अनेक रूपों में गालियों का प्रयोग कितना व्यापक हो गया है. हास्य व्यंग्य के आवरण में प्रस्तुत लेख में देखिए। -छात्र-सम्पादक]

क्या आप गालियाँ देते हैं ? अवश्य देते होगें, जोर से नहीं तो मन में, लेकिन आप चौंक क्यों गये ? गाली देना कोई बुरी बात नहीं ! अजी यह तो वह अस्त्र है, जो अच्छे-अच्छे पहलवानों की हवा बन्द कर देता है, और इससे आप स्वयं परिचित हैं !

कहते हैं आवश्यकता आविष्कार की जननी है। न जाने किस युग में, किस अवतार द्वारा, इसका प्रादुर्भाव हुआ ! कम-से-कम कंस ने कृष्ण को, रावण ने राम को, मूर्ख, अज्ञानी मूढ़, कह कर गाली दी ही थी।

युग बदले, समय बदला, मानव बदला, चाँद पर बढ़ने की रफ्तारें बढ़ीं, मानव-मस्तिष्क विकसित हुआ, गालियों की डायरियाँ भी भरती गईं। गालियों के अनेक रूप हमारे समक्ष चले आये। उदाहरणार्थ-मित्रों में दी जाने वाली गालियाँ, सड़क पर रौनक बढ़ाने वाले युवकों की गालियाँ, सास-बहू के बीच दी जाने वाली गालियाँ, ब्याह में दी जाने वाली गालियाँ, और फिर गालियाँ तो एक रुचिकर विषय बन गया, जिसे देने वाला व्यक्ति दादा माना जाता है !

हमें ही लीजिए। न जाने किस देवता की कृपा से हम इस विषय को नहीं अपना सके। न तो स्कूल में और न ही कॉलेज में। जब स्कूल से कॉलेज में आये, तो एक वर्ष पश्चात् एक मित्र मिले। दुआ-सलाम के तुरन्त बाद ही कहने लगे-'यार ! गाली देना सीखा या नहीं ? हम हारे खिलाड़ी की तरह उनका मुँह ताकते रहे। क्या कहते ? वह बोले, "कॉलेज में पढ़ते हो या मन्दिर में ?" गुस्सा तो इतना आया कि इतनी गालियाँ दूं कि जनाब की तबियत झक हो जाय। पर अपने पर तरस आया, काश हमें भी गालियाँ आतीं !

देखिये, आजमाइये, फिर हमें बताइये, आपको कहाँ तक सफलता मिली है। कवि-सम्मेलन में जाइये। जब कविता-पाठ चल रहा हो, तो ठीक मंच के विपरीत दिशा में खड़े होकर आप अपने श्रीमुख से दो-चार गालियों का सृजन कीजिए, देखिये क्या होता है ! कवि-सम्मेलन में मस्त श्रोता अनायास आपकी ओर आकर्षित हो जाएंगे। दो-चार युवक आपके समक्ष आकर गालियाँ देंगे। फिर आप दीजिए। देखिये फिर तमाशा, नई-नई गालियों का सृजन चन्द मिनटों में अपने उत्पादन की चरम सीमा पर होगा, और गाली-सम्मेलन प्रारम्भ हो जायगा, जिसका उद्घाटन आपके श्रीमुख द्वारा होगा !

गाँधी का नियम था-कोई आपको एक थप्पड़ मारे, तो आप दूसरा गाल भी उसके आगे करदो। ठीक उसी तरह, आपको, कोई गाली दे, तो आप अपनी हलकी-सी मुस्कराहट से उसका स्वागत कीजिए, यही काफी है। वह गरम होकर गाली की और व्याख्या करेंगे, फिर आप हँस भर दीजिये। देखिये, फूल-सी नाजुक गालियों से आप लद जायेंगे, पर ध्यान रखिये, कहीं श्रीमान जी गाली देते-देते खड़ताल-नुमा हाथ पैर न चलाने लगें, वरना आपका कीर्त्तन हो जायगा !

यदि पहलवान मारे तो कमजोर हमेशा गाली देकर अपना मन ठन्डा करेगा। आजकल के डेढ़-हाथ के दादा, भजन करते हाथ-पाँव, रूखे बाल, सूखे गाल, स्वेच्छाचारिणी जिह्वा अति क्रूर रूप से आप पर गाली की बौछार, करते

हैं। ऐसे में कहीं आप डर गये तो गये, काम से, और यदि कोमल हाथों के दो-चार थप्पड़ जड़ दिये, तो वे गाली तो देगें, पर अपने घर की ओर भागते-भागते, आपकी तरफ नहीं !

कहीं आप यह तो नहीं समझ रहे कि मैं गालियां तो नहीं देता हूँ, पर दिलचस्पी ज्यादा रखता हूं ! खुदा खैर करे, अपने मुँह से तो सा ··· ला भी अटकते-अटकते ही निकलता है, क्योंकि गाली देने से पहले अपनी तन्दुरुस्ती का ख्याल आ जाता है। कहीं गाली देते ही पड़ौसी ने हाथ जमा दिये तो !

मैं यह तो नहीं कहता कि आप गाली न दीजिये। जरूर दीजिए, पर मीठे मधुर और आकर्षक शब्दों में, ताकि सुनने वाला भी कहे, प्लीज एक बार और ·· !

यदि आप गाली देने के शौकीन हैं, तो अपने मित्रों को प्रोत्साहन हरगिज न दीजिए, अन्यथा गुरू गुड़ और चेला शक्कर, और कन्ट्रोल के जमाने में यह शक्कर भी हाथ से जाती रही, तो समझिये नुकसान ही है ! फिर भी, यदि गाली दिये बिना रह नहीं सकते, तो एकान्त में जाकर अपने को इतनी गाली दीजिये कि आप का जी भर जाय, आदत भी जाती रहेगी, कोई देखेगा भी नहीं !

अस्तु, गालियाँ देना उचित नहीं। शिक्षा नहीं दे रहा, पते की बात कह रहा हूँ ! आप मुझे गालियाँ तो नहीं दे रहे कि आया बड़ा शिक्षा देने·······जी, गाली दीजिये, शौक से पर समयानुसार। अनुचित गालियों का प्रयोग न कीजिये। केवल वही गालियाँ दीजिये, जो रुचिकर हों, और सभी जिनकी सराहना कर यही कहें :—

"वाह साहब ! क्या गाली दी, मजा आगया!" ······

हिन्दी : विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में

महेन्द्रकुमार शर्मा, तृतीय वर्ष कला

[राष्ट्रभाषा-हिन्दी को राजभाषा बनाने के मार्ग में बाधा यह नहीं है कि उसका विरोध है, बल्कि एक सबसे बड़ी बाधा कतिपय राजनैतिक दलों के राजनीतिक स्वार्थ हैं। इस तथ्य की पुष्टि करते हैं--- विभिन्न महान व्यक्तियों के वे विचार, जिनका संग्रह प्रस्तुत लेख में किया गया है। छात्र-सम्पादक]

वह गाँधी जिसने सन् १९२१ में भुजा उठाकर कहा था कि इस देश की राष्ट्रभाषा केवल हिन्दी है, वह गाँधी जिसने १९३० में कांग्रेस से अपनी इस मान्यता को मनवाया था, वह गाँधी जिसने १९३६ में पहले-पहल प्रदेशों में बनने वाली कांग्रेस सरकारों से यह वचन लिया था कि वे केवल एक साल में अपना कामकाज हिन्दी में करने लगेंगीं, वह गाँधी जिसने १५ अगस्त, १९४७ यानी भारत की आजादी के दिन बी. बी. सी. को केवल एक पंक्ति का सन्देश देते हुए कहा था—"दुनियां से कह दो, गाँधी अंग्रेजी नही जानता !" आज उसी के कथित उत्तराधिकारी गर्व से यह कहते हैं कि हमें हिन्दी नहीं आती, हिन्दी राजकाज के लिये अक्षम है, हिन्दी के लागू करने से देश टूट जायेगा, बिना अंग्रेजी के हम अपंग हो जायेंगे, हमारे ज्ञान-विज्ञान का स्रोत सूख जायेगा, हिन्दी सीखकर हमें मूर्ख और जाहिल नहीं बनना है, जब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ब्रिटेन की भाषा अंग्रेजी है, तब भारतीय गणराज्य की भाषा अंग्रेजी क्यों नहीं हो सकती ? कैसी विडम्बना है !

मगर २६ जनवरी, १९६५ को सर्वत्र हिन्दी लागू की गई। जनता और हिन्दी के भोले नेता सरकार के भ्रमजाल में रहे। यद्यपि ये लोग (हिन्दी प्रेमी) सरकारी नौकरियां, पद-पुरस्कार पाकर सन्तुष्ट होते रहे, तथापि अंग्रेजी के समर्थक योजनाबद्ध रीति से (सरकारी अफसरों और विभागों में) साम-दाम-दण्ड-भेद से आगे बढ़ते रहे।

सन् १९६३ में एक विधेयक पास हुआ, जिससे हिन्दी लंगड़ी हुई और अब १९६७ का यह दूसरा विधेयक प्रस्तुत है, जिससे वह बिलकुल अपंग हो जाएगी। उधर शिक्षा में प्रादेशिक भाषाओं का सिद्धांत स्वीकृत हुआ, इधर केन्द्रीय सेवा-आयोग में प्रादेशिक भाषाओं को अनुमति मिली। इस तरह शिक्षा, परीक्षा और प्रशासन तीनों में से हिन्दी की वरीयता और अनिवार्यता को चुपके-से, चतुराई से समाप्त कर दिया गया! सन् १९५० में जो हिन्दी राजभाषा मानी गई थी, आज वह केवल प्रादेशिक भाषा है।

भारत के शिक्षामंत्री श्री त्रिगुण सेन ने अभी घोषणा की है कि भारत में विश्वविद्यालय तक शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएं होंगी। यद्यपि मैं इस घोषणा का स्वागत करता हूं तथापि यह भी महसूस करता हूं कि किसी भी देश में किसी विदेशी भाषा का ऐसा दौरदौरा नहीं, जैसा इस देश में अंग्रेजी का है। स्वतंत्रता-प्राप्ति को २० वर्ष हो गये। पराधीनता के समय जो अंग्रेजी भाषा हम पर लादी गई थी और डेढ़-सौ, पौने दो सौ वर्षों के अंग्रेजी राज्य रहने पर भी जिसे इस देश के दो प्रतिशत लोग भी अच्छी तरह नहीं जान पाये, इस देश पर स्वतंत्रता के बाद भी अंग्रेजी लदी रही और आज भी अंग्रेजी के समर्थक उसे लादे रखना चाहते है, इससे अधिक खेद की बात नहीं हो सकती।

शिक्षा के क्षेत्र में इस विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से, शिक्षा के हर विषय को अंग्रेजी माध्यम से सीखने में कितना अपव्यय होता है, यह एक सोचने की बात है। फिर अंग्रेजी में हमारे कितने भाई-बहन अनुत्तीर्ण होते हैं इस बात पर भी गौर किया जाये तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि केवल एक अंग्रेजी में अनुत्तीर्ण होने के कारण फिर से समस्त विषयों में परीक्षा देनी पड़ती है। भारत सरकार के शिक्षा-सलाहकार श्री जे. पी. नायक ने इस प्रकार के अनुत्तीर्ण छात्रों के सम्बंध में, कहा था—"लगभग साठ से सत्तर प्रतिशत देहाती छात्र अंग्रेजी का न्यूनतम ज्ञान प्राप्त न होने के कारण फेल हो जाते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि पुनः परीक्षा में बैठने के लिये उन्हें सारे विषय दोबारा पढ़ने पर बाध्य होना पड़ता है।" यह सोचने की बात है कि केवल अंग्रेजी में फेल हो जाने से दुबारा परीक्षा देने में कितना समय और शक्ति हमारे देश की आबादी की नष्ट हो रही है!

आज का युग हमारे देश के लिये नव-निर्माण का युग है। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हम विज्ञान पर निर्भर हैं, परन्तु हम देखते हैं कि वैज्ञानिक प्रगति बड़ी धीमी गति से हो रही है। उसका मुख्य कारण विदेशी भाषा द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. डी.एस. कोठारी के शब्दों में—"अपनी भाषा (मातृभाषा) में ज्ञान प्राप्त करने के विशेष लाभ से इन्कार नहीं किया जा सकता। तकनीकी शब्द यदि विदेशी भाषा में हों, तो उन्हें समझना और याद रखना कठिन होता है, तोता-रटन्त, मानसिक दबाव और बौद्धिक ह्रास। अत: विज्ञान को व्यापक स्तर पर लोकप्रिय बनाने का कार्य केवल क्षेत्रीय भाषाओं से ही सम्भव है।"

अतएव देश के विद्यार्थियों के समय की बचत, एक विदेशी भाषा में अनुत्तीर्ण होने पर, उनके जीवन का एक प्रकार से नाश न हो, देश की भौतिक उन्नति तथा वैज्ञानिक प्रगति के लिये, हर दृष्टि से शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा का होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

आद्य शंकराचार्य ने भारतीय संस्कृति का उद्धार करने के लिये देश के चारों कोनों पर चार मठों की स्थापना—बद्रिकाश्रम में ज्योतिष्पीठ, गुजरात में द्वारकापीठ, उड़ीसा में पुरीपीठ और दक्षिण में शृंगेरीपीठ, की थी। बद्रिकाश्रम् में ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य ने अंग्रेजी भाषा से छुटकारा न मिलने का कारण बताते हुऐ कहा था कि —"इसका एक मात्र कारण यही है कि कुर्सी पर गोरों की जगह काले अंग्रेज बैठ गये हैं, जो न अपनी सभ्यता-संस्कृति को पसंद करते हैं और न वेशभूषा और भाषा को। वे अंग्रेजी में बोलना, उसका उपयोग करना गौरव की बात समझते हैं। किन्तु उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि जब तक विदेशी भाषा का बहिष्कार करके हम अपनी जन-जन की हिन्दी भाषा को महत्व न देंगे, तब तक हम पूर्ण स्वाधीन कहलाने के अधिकारी नहीं हैं!"

गुजरात में स्थापित द्वारकापीठ के शंकराचार्य ने जब राजभाषा विधेयक के सम्बन्ध में एक प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा था कि-"भारत के स्वाधीन होते ही १५ अगस्त, १९४७ के दिन दो काम किये जाने चाहिये थे-सबसे पहले गोहत्या के कलंक का उन्मूलन और दूसरा अंग्रेजी की विदाई। किन्तु देश का दुर्भाग्य है कि आज देश के माथे पर दोनों कलंक चिपके हुये है ।" इसका मूल कारण केवल राजनीतिक स्वार्थ है ।

यह विचित्र बात है कि दो प्रतिशत लोगों की समझ में आने वाली विदेशी भाषा समस्त भारतीय भाषाओं को अपने शिकंजे में जकड़े हुये है। जबतक हम अंग्रेजी से पूरी तरह से अपना पिंड नहीं छुड़ायेंगे, तब तक हिन्दी और संस्कृत ही क्या, तेलगु, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, गुजराती आदि किसी भी भारतीय भाषा की प्रगति असम्भव है। हमें संगठित हो कर अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त होना ही चाहिये।

उड़ीसा में स्थित पुरी-पीठ के शंकराचार्य ने धार्मिक जनता के नाम पर अपना संदेश देते हुये कहा था : "समस्त भारतीय देशभक्त जनता को इस राष्ट्र-विरोधी और भारतीय भाषाओं को डसने वाले राजभाषा विधेयक का डटकर विरोध करना चाहिये तभी हम अंग्रेजी के इस कलंक से मुक्त हो सकेंगे।"

दक्षिण के श्रृंगेरी-पीठ के श्री शंकराचार्य से पूछे गये इस प्रश्न का कि दक्षिण में हिन्दी का विरोध क्यों ?-का उत्तर स्पष्ट करते हुये कहा-"जनसाधारण में किसी भी भारतीय भाषा का किंचित् भी विरोध नहीं है। यह सब राजनीतिक प्रोपेगन्डे और व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण ही स्टंट खड़ा किया गया है।"

मैसूर के मुख्यमंत्री श्री निर्जालगप्पा ने भोपाल में 'रविशंकर शुक्ल हिन्दी भवन' का उद्घाटन करते हुये कहा था-"हिन्दी केवल उत्तर की नहीं, दक्षिण की भी भाषा है। दक्षिण की जनता बुनियादी तौर पर हिन्दी के कतई विरुद्ध नहीं है, वहां तीस प्रतिशत से अधिक लोग हिन्दी सीख चुके हैं और स्वेच्छा से सीखने का यह क्रम अब और भी तेजी से आगे बढ़ता जारहा है।"

८ अक्टूबर, १९६७ को राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन ने दिल्ली में पहली बार आयोजित गुजराती साहित्य-परिषद् के तीन-दिवसीय अधिवेशन का उद्घाटन करते हुये कहा : अंग्रेजी के बदले क्षेत्रीय भाषाओं को लागू करने के के लिये समय की कोई सीमा तय करने से अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि क्षेत्रीय भाषाओं को लागू करने के दिशा में हार्दिक और निष्ठापूर्ण शुरुआत की जाये। अंग्रेजी शिक्षा – दीक्षा ने हमारे सामान्य दैनिक जीवन की परम्पराओं को भी अस्त-व्यस्त कर दिया है। अंग्रेजी ने हमारे माता-पिता, पत्नी, बीबी जैसे शब्दों को भी हमसे भुलवा दिया और हम मादर-फादर, ममी-डैडी के चक्कर में पड़ गये। इतना ही नहीं एक समय ऐसा भी आया कि हमारे घरों की भाषा भी बदल गई तथा पति-पत्नी, भाई-बहनें आपस में अंग्रेजी में बोलने लगे और प्रेम-पत्र भी अंग्रेजी में लिखे जाने लगे !"

श्री विनोबा जी ने अंग्रेजी को बेकारी का कारण बताते हुये कहा—"आज जो बेकारी की समस्या है, उसका एक कारण अंग्रेजी शिक्षा भी है। आज का युवक अंग्रेजी पढ़ लेने के बाद सिवा नौकरी के और कोई काम करना नहीं चाहता। वह खेती करे या कोई उत्पादन-श्रम ऐसी कल्पना अंग्रेजी पढ़ने से नहीं मिलती। हर साल गांव से लाखों युवक शहरों में पढ़ने के लिये आते हैं,—पर परीक्षाएं पास करके गांव में जाना पसंद नहीं करते। जो भाषा हमारे मन में नौकरी की वृत्ति पैदा करती है, जिसके पढ़ने से उत्पादक-श्रम और खेती से नफरत पैदा होती है, उस भाषा से स्वराज्य के बाद भी लोगों को इतना मोह क्यों है, यह बिल्कुल समझ में नहीं आता।"

●●

हिन्दी के मार्ग की बाधाएँ

कृष्णसिंह कटारिया, तृतीय वर्ष, विज्ञान

[राष्ट्र की दो आँखों---राष्ट्रभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं---में प्रखर ज्योति का अक्षय मण्डार होते हुए भी, कुछ तो मोहवश और कुछ चंद लोगों के डर से, किसी विदेशी भाषा के अ-पारदर्शी काले शीशों के चश्मे को चढ़ाए रखकर अन्धा बना रहना, बुद्धि का दिवालियापन नहीं तो और क्या है। दुर्भाग्यवश, हम ऐसे ही देश में रह रहे हैं, जहाँ शासन एक विदेशीभाषा-अंग्रेजी को सर पर चढ़ाए हुए राष्ट्रभाषा-हिन्दी को राजभाषा मानने को तैयार नहीं है। आखिर क्यों? प्रस्तुत लेख में इसी पर सशक्त एवं अकाट्य तर्कों द्वारा विचार किया गया है। ---छात्र सम्पादक]

भारतवर्ष की स्वतंत्रता का आन्दोलन राष्ट्रव्यापी रूप में आरम्भ हुआ, उसका उद्देश्य राजनीतिक शक्ति अपने हाथ में करना था, देश को अंग्रेजी साम्राज्य से छीनना था। परन्तु आन्दोलन की नींव भारतीय संस्कृति पर ही आधारित थी। किसी भी देश का व्यक्तित्व उसकी संस्कृति पर निर्भर है और यदि वह अपनी संस्कृति की रक्षा नहीं कर पाता, तो उसका अपना अलग व्यक्तित्व टिकना भी संभव नहीं।

१९४७ के बाद स्वतंत्र भारत में हम अंग्रेजों की दी हुई संस्कृति के उपासक बने। राजनीतिक सत्ता हमारे हाथ में आने से कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आज हम देख रहे हैं कि वास्तव में अंग्रेजों की बनाई हुई समाज-रचना, शिक्षा, शासन और मोटे तौर पर पाश्चात्य संस्कृति, इतने मजबूत ढंग से जम गये हैं कि यदि हम यह कहें कि आज हम स्वतंत्रता के काल में उस अंग्रेजी सामाजिक ढंग और संस्कृति के कट्टर उपासक हो गये हैं, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अंग्रेजी राज्य की पक्की नींव डालने वाले लार्ड मेकाले हैं, जिन्होंने सलाह दी कि भारतवर्ष की शिक्षा पद्धति न केवल अंग्रेजी के माध्यम से हो, परन्तु इंगलैण्ड में जो पद्धति प्रचलित है, उसी के अनुसार यहाँ शिक्षा दी जाय। उस शिक्षा की नींव अंग्रेजी है, उसके तरीके इंगलैण्ड से लाए हुए हैं। आज विषयों का पठन-पाठन, कॉलेज और विश्वविद्यालय की रचना वहीं की परम्परा के अनुसार हुई है। हम उसी प्रवाह में बहे जा रहे हैं, जिसे अंग्रेजों ने बहाया था। इस समय देखा जाए तो हमारे शिक्षा-शास्त्री सबसे ज्यादा अंग्रेजी के भक्त बने हुए हैं! जो पद्धति अंग्रेजों ने चलाई है, उसी को वे चाहते हैं, बल्कि उनकी महत्वाकांक्षा यह है कि इंगलैण्ड और अमेरिका के ढंग के विश्वविद्यालय हमारे यहाँ बनें। वेश-भूषा में भी हम देखते हैं कि जो परिवर्तन अंग्रेजों के समय में प्रारंभ हुआ, वह स्वतंत्रता के बाद और तेजी से बढ़ रहा है! सार्वजनिक रूप से जितनी उपेक्षा भारतीय भोजन की होती है, उतनी किसी और चीज की नहीं होती। शायद हमें इस बात की शर्म लगती है कि कहीं हम अपना रोटी-दाल का भोजन करते हुए न देखे जाएँ!

२६ जनवरी, १९५० को संविधान द्वारा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी भारत में राजभाषा मान ली गई थी, पर साथ ही यह शर्त लगा दी गई थी कि उसका प्रचलन १५ वर्ष बाद होगा। विधि-मंत्री डा० अम्बेडकर ने संविधान का ढाँचा बनाया और उनकी सहायता के लिये अधिकतर दक्षिणी लोग रखे गए। उस कच्चे संविधान में चार पंक्तियों का एक पैरा निकला था, जिसमें लिखा था कि भारत की भाषा देवनागरी में लिखित हिन्दी होगी। हिन्दी-विरोधी इससे चौकन्ने हो गए।

भाषा के प्रश्न को संविधान में टालने की पूरी कोशिश की गई, परन्तु अन्त में जब सारी धाराओं और अध्यायों पर विचार हो चुका, तो भाषा का प्रश्न लेना ही पड़ा। समय की अवधि, जो प्रारम्भ में ५ साल रखी जाने वाली थी बढ़ते-बढ़ते १० वर्ष हो गई और जब हिन्दी-विरोधियों को इतने पर भी संतोष न हुआ, तो १५ वर्ष की अवधि की बात आई। इसका फल यह हुआ कि डा० अम्बेडकर ने भाषा-प्रश्न से अपने को अलग कर लिया। और इस समस्या को हल करने के लिये श्री कन्हैयालाल

माणिकलाल मुन्शी जो पहले ही घोषणा कर चुके थे, 'हिन्दी फैसलों की भाषा नहीं हो सकती' आये। यह सब नेहरूजी के विचारों को मूर्तरूप देने के लिये हो रहा था। स्मरण रखना चाहिए कि अनुच्छेद ३४८ श्री मुन्शी के प्रयास का फल है, जिसके द्वारा हिन्दी को एक प्रकार से सदा के लिए उच्चतम और उच्च न्यायालयों से दूर रखने का प्रयत्न किया गया है। १४ सितम्बर को भाषा फार्मुला संविधान-सभा में पास हो गया। पन्त जी और सरदार पटेल ने दोनों में सक्रिया भाग नहीं लिया, एक नेहरूजी के अनुवर्ती और दूसरे उससे विरक्त ! इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी को राजभाषा बनाने में देश के नायकों की मनोवृत्ति राष्ट्र-भावना के कितने विपरीत और असंतुलित थी।

नेहरू जी के संबन्ध में कहा जाता है कि वह अंग्रेजों के समान किसी भी प्रश्न को लम्बा खींचते थे, परन्तु अंग्रेजी को स्थिर रखने तथा उसे बढ़ाने में नेहरूजी ने बड़ी तत्परता दिखाई। ऐसी तत्परता जिसे अंग्रेज भी अपने १५० सालों में न दिखा सके थे। मृत्यु से पूर्व नेहरूजी ने एक तरह यह भी पास करवा दिया कि जब तक एक भी राज्य अंग्रेजी का चलन चाहेगा, हिन्दी राजभाषा नहीं बनेगी। बाद में शिक्षा-मंत्रालय में पारिभाषिक शब्दावलियों के लिये कितनी ही समितियाँ नियुक्त कीं कि शब्द बन जाएँगे, तब हिन्दी सरकारी भाषा बनेगी। इस प्रकार ऐसे निर्वाद प्रयोग आरम्भ किये, जिनसे हिन्दी का प्रश्न खटाई में पड़ जाए। मौलाना आजाद के पीछे डा० श्रीमाली शिक्षा मंत्री बने और उन्होंने हिन्दी का कुछ भला करना चाहा तो नेहरूजी ने उन्हें कामराज योजना में अलग कर दिया। फिर श्री चागला को शिक्षा मंत्री बनाया गया। क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि नेहरूजी ने सदा हिन्दी को न पनपने देने के लिए राजकाज मे उसे दूर रखने के प्रयत्न किये और ये प्रयत्न हिन्दी के लिए अहितकर सिद्ध हुए। दो भाषाएँ पढ़ाने की जो नीति अपनाई गई, उसका भी यही उद्देश्य है कि अंग्रेजी समग्र भारत में बनी रहे और दक्षिणी राज्यों से हिन्दी विदा हो जाए !

नेहरूजी के आश्वासनों की आड़ में जब कोई अंग्रेजों को भारत में टिकाये रखने की बात कहता है, तब वह यह क्यों भूल जाता है कि इस सम्बन्ध में गाँधी जी ने भी कुछ आश्वासन दिये थे। गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन शुरू किया। वे हमेशा भारतीय संस्कृति पर जोर देते थे, भारतीय भाषा को राष्ट्रभाषा बनना चाहिए और हिन्दी ही ऐसी भाषा हो सकती है, इसका प्रचार करते थे। उनका कथन था कि वेशभूषा में, खान-पान में, रहन-सहन में हमें भारतीय ढंग बरतना चाहिए। एक बार विनोबा ने कहा था—"जिस प्रकार मनुष्य को देखने के लिए दो आँखों की आवश्यकता होती है, उसी तरह राष्ट्र के लिए दो भाषाओं—प्रान्तीय और राष्ट्रभाषा की आवश्यकता होती है। अंग्रेजी भाषा चश्मे के रूप में काम आयेगी। चश्मे की जरूरत सबको नहीं पड़ती। कभी-कभी कुछ लोगों को उसकी जरूरत पड़ सकती है। बस इतना ही अंग्रेजी का स्थान है-इससे अधिक नहीं!" इस प्रकार देश की भावना का जैसा प्रतिनिधित्व विनोबा कर सकते हैं, उतना सारे अंग्रेजी भक्त मिलकर भी नहीं कर सकते।

अंग्रेजी के पक्ष में सबसे प्रबल तर्क यह दिया जाता है कि सम्पूर्ण आधुनिक ज्ञान-विज्ञान आँग्ल भाषा में ही उपलब्ध है, अतः उसके बिना शिक्षा का स्तर ऊँचा होना असंभव है। वास्तविकता यह है कि आज हमारे देश की महती शक्ति केवल इसी भाषा अध्ययन के पीछे नष्ट हो रही है। भारत का, विशेषतः उच्चतर माध्यमिक एवं बी. ए. का छात्र अपना आधे से अधिक समय अंग्रेजी में दक्षता प्राप्त करने में व्यय करता है। किन्तु फिर भी अधिकांश छात्र अंग्रेजी में अनुत्तीर्ण होते हैं। भारत के छात्र जितनी शक्ति, समय, बुद्धि और धन अंग्रेजी को सीखने में लगाते हैं, यदि उतनी ही शक्ति वे अपनी रुचि के किसी दूसरे विषय में लगा पाएँ, तो वे अपने विषय को अधिक समझ सकेंगे।

अब रहा तकनीकी विषयों का सवाल, तो तकनीकी विषयों पर भी बहुत कुछ साहित्य तैयार हो चुका है। शेष में और गति लाई जा सकती है। जैसा कि पाँच साल का समय और माँगा गया है। पाँच साल कुछ कम नहीं हैं। पर यदि मन ही न हो, तो फिर जैसे पाँच साल कम है, वैसे ही पचास साल भी कम हैं। यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो गया है। जब कमालपाशा के हाथ में तुर्की का शासन आया, तब उसके सामने भी भाषा-नीति की समस्या

उपस्थित हुई थी, उसने शिक्षा-शास्त्रियों को बुलाकर पूछा "तुर्की भाषा के माध्यम से राजकाज करने में कितने वर्ष लगेंगे ?" लोगों ने बताया दस वर्ष। कमालपाशा ने तुरन्त आदेश दिया— **"समझ लीजिए वे दस वर्ष कल प्रातः १० बजे समाप्त हो जायेंगे। आप सारा राज-काज का काम तुर्की भाषा में ही करेंगे।"** पवित्र मन और राष्ट्रीयता की भावना का यह एक ऐसा दिव्य उदहारण है, जिसके उज्ज्वल प्रकाश में हम अपनी भाषा और शिक्षा-नीति का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। स्वभाषा के प्रति जब स्वाभिमान की भावना होती है, तब ऐसी ही शुभ घोषणाएँ होती हैं।

न तो अंग्रेजो ओर न्याय पर्यायवाची हैं, न ही अंग्रेजी और विज्ञान पर्यायवाची हैं और न ही अंग्रेजी और प्रगति पर्यायवाची हैं। शायद अंग्रेजी-भक्त इस तथ्य से इंकार नहीं करेंगे। परन्तु यदि "अन्तर्राष्ट्रीय लाभ" के नाम पर अंग्रेजी की वकालत की जाती है, तो ऐसे वकीलों की तुलना उस व्यापारी से की जा सकती है जो अपने व्यापार को चमकाने के लिए विदेशी महिला से विवाह कर लेता है, क्योंकि विदेशों के समाज से उस महिला के सामाजिक सम्पर्क हैं। उस व्यापारी को इस प्रकार के विवाह द्वारा पति-पत्नी के प्रेमपूर्ण आनन्द की प्राप्ति की आशा नहीं होती।

जब किसी देशी भाषा को भारत के राजकाज की भाषा बनाना है, तो वह हिन्दी है। यदि इस में रुकावट डाली गई तो वह निष्फल होगी ही, उसके अनेक दुष्परिणाम भी निकलेंगे। अंग्रेजी को राजतंत्र और उसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए शिक्षा में अनिवार्य बना कर रखने का पिछले २० वर्ष में जो नुकसान राष्ट्र को हो चुका है, उसको पूरा कर पाना अत्यंत कठिन है, क्षति का मोटा अनुमान ही लगाना काफी होगा। बड़े शहरों के अलावा करोड़ों छात्र पिछले २० सालों में ऐसे क्षेत्रों के स्कूल कॉलिजों में शिक्षा पाने गए, जहाँ अंग्रेजी के पठन-पाठन का वातावरण व व्यवस्था ऐसी नहीं थी कि वे अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते। लिहाजा, करोड़ों की संख्या में पढ़ाई छोड कर बैठ गए और देश लाखों भावी वैज्ञानिकों, डाक्टरों, इंजिनियरों से वंचित हो गया, जब कि उनकी उस स्तर तक की 'साक्षरता' पर करोड़ों रुपया खर्च हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में भारी अपव्यय का कारण अंग्रेजी में पढ़ाई है। इससे इन्कार करना सचाई से आँख मूँद लेना है।

हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रश्न न सुलझने का मुख्य कारण यह है कि समाज के प्रत्येक कार्य में और शिक्षा में भी अंग्रेजों ने अपनी भाषा को इस प्रकार जमा दिया कि जिन लोगों ने आरम्भ में विरोध के साथ इसको सीखा, वे ही उसके कट्टर समर्थक इसलिये बन गये कि उनका प्रभुत्व दूसरी राष्ट्रभाषा के आने से शायद हट जाए! देश के बहुत से लोग ऐसे भी हैं, कि अंग्रेजी हमेशा के लिए हमारी राष्ट्रभाषा बने। हिन्दी-विरोधी इस विदेशी भाषा की श्रेष्ठता मानने को तैयार हैं, किन्तु किसी भी भारतीय भाषा को अपने से बढ़ी हुई मानना नहीं चाहते।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि स्वतंत्रता के बाद भारतवर्ष अपने नए आदर्श और अपना नया व्यक्तित्व स्थापित नहीं कर सका और न करने की कोशिश में है। कोई आमूल परिवर्तन या क्रान्ति हम किसी क्षेत्र में न ला सके। इसके कई कारण हो सकते हैं, कारण चाहे जो हों, यह तथ्य स्पष्ट है कि हम तेजी के साथ पश्चिमी समाज, संस्कृति और आदर्श को अपना रहे हैं और उन में कहाँ तक सफलता पा सके हैं, यह संदेहास्पद है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि यद्यपि हमने राजनैतिक दृष्टि से अंग्रेजों को हराया, तथापि उन्होंने सांस्कृतिक दृष्टि से हमें जीत लिया और शायद हमेशा के लिए !

(भारतीय प्रजातंत्र के तीन अभिशाप) सिफारिश, रिश्वत, भाई-भतीजावाद

महावीर प्रसाद अजमेरा, तृतीय वर्ष कला

[देश में प्रजातंत्र है। ऐसा प्रजातंत्र है, जिसमें अनेकानेक बुराइयों ने घर कर लिया है। इसलिए आवश्यकता है--- बुराइयों के उन्मूलन की। इसी में देश और उसके प्रजातंत्र की सुरक्षा है। इन बुराइयों के उन्मूलन के लिए विद्यार्थी वर्ग क्या-कुछ कर सकता है, इस लेख में इसी विषय पर, एक राजनीति-विज्ञान के छात्र का दृष्टिकोण प्रस्तुत है। --छात्र सम्पादक]

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है। आज विश्व में अन्य शासन-प्रणालियों की अपेक्षा प्रजातंत्रीय शासन-प्रणाली ही अधिक सफल और श्रेष्ठ मानी जाती है, जिसका कारण है कि प्रजातंत्र 'जनता की आवाज' है। जैसा कि अनेक विद्वानों ने इसके बारे में परिभाषाएं दी हैं–

लिकंन—"प्रजातंत्र का अर्थ है-प्रजा का शासन, प्रजा से और प्रजा के लिए ।"

श.ले—"प्रजातंत्र वह शासन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का अपना भाग होता है।"

इस प्रकार अनेक विद्वानों ने प्रजातंत्रीय शासन के बारे में अपने विचार लिखे हैं और उन्हीं के आधार पर इस शासन-प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित मानी जाती हैं —

(१) प्रजातंत्र राष्ट्रीय भावना तथा देश प्रेम को जागृत करता है।

(२) प्रजातंत्र देश-प्रेम की भावना बढ़ा कर क्रान्ति के खतरे को कम करता है।।

(३) लोकतंत्र में राज्य प्रभुता-शक्ति पर नहीं अपितु सहमति पर स्थिर रहती है।

(४) लोकतंत्र सामाजिक एकता का एक उत्कृष्ट साधन है।

लेकिन प्रश्न उठता है कि क्या प्रजातंत्र शासन-प्रणाली पूर्ण रूप से सफल हुई है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर यही आता है कि यद्यपि प्रजातंत्र शासन-प्रणाली पूर्णरूप से सफल नहीं हुई है, लेकिन अन्य शासन-प्रणालियों की तुलना में यह शासन प्रणाली, जिसकी लाठी उसकी भैंस के स्थान पर जनता की सर्वोच्चता स्थापित करती है। जो वास्तव में मानवता की भावना को जन्म देती है।

अब दूसरा प्रश्न हमारे सामने आता है कि भारत में यह शासन प्रणाली सफल हुई है या नहीं। मेरे विचार व पिछले तीन आम चुनावों के अनुभव से यही उत्तर मिलता है कि भारत में यह शासन प्रणाली सफल नहीं हुई है। क्यों ? आखिर वे कौन से कारण हैं जिनकी वजह से भारत में यह शासन प्रणाली सफल नहीं हो पा रही है और इसकी सफलता के लिए किन बातों की आवश्यकता है ? वे निम्न हो सकती हैं।

(१) प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों में जनता के विश्वास की कमी का दूर होना
(२) बौद्धिक आवश्यकताएं
(३) वैधानिक परम्परायें
(४) नैतिक आवश्यकतायें
(५) राजनीतिक जागरण
(६) सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समानता
(७) राजनीतिक दलों का विशुद्ध कार्यक्रमों पर संगठन
(८) स्वायत्त शासन का संगठन
(९) राज्य में शान्ति और सुरक्षा

पुन: प्रश्न उठता है कि भारत में प्रजातंत्र की सफलता के लिए सबसे महत्वपूर्ण दशा क्या है। इसके उत्तर में मैं चौथी दशा नैतिक-आवश्यकता में तथा छठी दशा सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक समानता को महत्वपूर्ण मानता हूँ। प्रजातंत्र की सफलता के लिये आवश्यक है कि व्यक्तियों का नैतिक स्तर ऊँचा हो। प्रजातंत्र वहीं फलता-फूलता है जहां

नागरिक जानते हुए भी लोक-सेवा के उद्देश्य से अपने क्षुद्र हितों को सार्वजनिक हितों के लिए बलिदान करते हैं, जहाँ नागरिक प्रजातंत्र से सम्बन्धित समस्त कार्यों को कर्तव्य की दृष्टि से करते हैं, और सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी विषयों में लालच, लगाव और स्वार्थ से ऊपर उठ कर अपने निर्णयों में ईमानदारी तथा न्यायप्रियता की भावना दर्शाते हैं। इसी प्रकार प्रजातंत्र शासन समानता के स्वर्ण सिद्धान्त पर आधारित है और इस के लिए आवश्यकता है कि समस्त समाज में धर्म, जाति, रंग, सम्प्रदाय धर्म आदि के भेद के बिना प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को समान अवसर प्राप्त हो और सबके साथ कानून, न्याय तथा अवसर की दृष्टि से सामान्य व्यवहार हो ! प्रजातंत्र में एक ओर अमीरी तथा दूसरी ओर बहुत गरीबी एक साथ नहीं चल सकती। राजनीतिक क्षेत्र में आवश्यक है कि देश में स्वतंत्रता का वातावरण हो। व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रजातंत्र का हनन है।

लेकिन भारतीय प्रजातंत्र में इन दोनों दशाओं की अत्यधिक कमी है। इस निबन्ध के शीर्षक में भारतीय प्रजातंत्र के तीन अभिशाप सिफारिश, रिश्वत और भाई-भतीजावाद लिखने का मेरा आशय यही है कि इस देश में ये तीनों तत्व छुआ-छूत की बीमारी के समान बढ़ते जा रहे है और प्रजातंत्र की आवश्यक दशाओं पर कीटाणु के समान प्रहार कर रहे हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण यह है कि जहाँ भी और जिस विभाग में भी अपनी उदरपूर्ति के लिए नौकरी करना चाहते हैं तो एक साधारण व्यक्ति ही नहीं एक शिक्षित व्यक्ति भी यही कहेगा कि श्रीमान जी क्या आपकी कोई सिफारिश है ? क्या आपकी किसी मंत्री महोदय से रिश्तेदारी है ? अगर नहीं है, तो मैं आपको नौकरी दिलवा दूगाँ, लिहाजा मेहनत क्या मिलेगी ? इस वाक्य से मैं स्वयं भी परेशान हूँ कि क्या ये वाक्य मुझे भी सुनने पड़ेंगे। मैं राजनीति विज्ञान का विद्यार्थी होने के कारण यह विश्वास करता था कि हमें शिक्षा प्राप्त होने पर उचित नौकरी मिलेगी क्योंकि प्रजातंत्रीय देश की प्रमुख विशेषता यही है कि राज्य के कार्यों के लिए हरेक-नागरिक को अपनी योग्यता के अनुसार अवसर पाने का अधिकार है। लेकिन जब उपरोक्त वाक्य जिसमें सिफारिश, रिश्तेदारी एवं मेहनत ये तीन शब्द सुनता ही नहीं जब प्रत्यक्ष में मैंने देखा तो उस समय की याद आती है कि जब मुझे भी इस प्रकार के व्यवहार की ओर से सतर्क होना पड़ेगा। क्या यही प्रजातंत्र है ? क्या यही जनता का शासन है ? क्या यही जनता की आवाज है ? क्या यही भारत के भाग्य विधाताओं का लक्ष्य है ? क्या आज के भावी नेता भी इन्ही तत्वों को प्रोत्साहन देंगे ? नहीं, भारत के वर्तमान विद्यार्थी जो देश के भावी कर्णधार हैं, इस प्रकार के तत्वों को कभी आगे नहीं बढ़ने देंगे। अगर विद्यार्थी अपनी शिक्षा का प्रमुख कर्तव्य अपने देश के विकास के लिये मानेगा और यह समझेगा कि यह देश मेरा है, मेरा जन्म देश के लिए हुआ है तो वह अवश्य ही, मुझे विश्वास है, इस प्रकार की भारतीय प्रजातंत्र में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करेगा।

मैं इस प्रकार की बुराइयों का निवारण न होना विद्यार्थियों के लिए एक चुनौती मानता हूँ, क्योंकि हमारे वर्तमान नेता व प्रजातंत्र के समर्थक हमारी आजादी के २० वर्षों में भी इस प्रकार की बीमारी का अन्त नहीं कर पाये बल्कि इसको बढ़ावा देते रहे हैं तो इसके निवारण की जिम्मेदारी मैं इन्हीं विद्यार्थियों को, जो कि भावी नेता हैं, मानता हूं।

विद्यार्थी प्रतिक्रियावादी तत्वों से ऊपर उठकर राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता का सच्चा अर्थ समझे और देश के प्रजातंत्र में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास करे तो मैं समझूंगा कि उन्होंने देश के लिए ही भारत में जन्म लिया है, न कि देश के ऊपर भारस्वरूप होने के लिए और इसी में विद्यार्थियों की सफलता तथा देश की प्रशंसा है।

सत्य और असत्य

रमेश 'मित्र', एम० ए०, पूर्वार्द्ध (हिन्दी)

(मनुष्य की कामनाएं सुन्दर, सुरभिमय और कोमल के हेतु चरण बढ़ाती हैं, पर मिलती है विफलता। मानव का हृदय टूक-टूक हो जाता है, और तब अवसाद उसे अनासक्ति के द्वार तक पहुंचा देता है, पर तभी उसे 'वह' अनायास ही मिल जाता है, जिसकी उसने कभी 'चाह' की थी। सुख की कामना दुःख देती है, पर दुःख के मार्ग पर कभी-कभी सुख-सुरभि फूट पड़ती है। किसे सत्य समझें और किसे असत्य, प्रस्तुत कविता में इसी तथ्य का ऊहापोह है। 'बिन माँगे मोती मिलें, माँगे मिले न चून।' --क्या यह जीवन का क्रूर सत्य नहीं है? प्रस्तुत कविता में इसी भाव को कवि ने मर्मस्पर्शी शब्दावलि के माध्यम से उरेहा है। .... सम्पादक)

तुम जो कहते हो-"बदला हूँ मैं !"
जितना है-सत्य,
उतना असत्य।

पहले मैं जाता था-फूलों की ओर
चाहता था-फूल
मिलते थे-काँटे
बिंधती थीं-उँगलियाँ
रिसते थे-पोर
अनजाने उपवन में बढ़ता ही जाता था-
दर्दों का शोर
टीस-टीस उठते थे-अंगों के छोर
भीग-भीग जाती थीं-नयनों की कोर !

फूलों की ओर
जाना ही छोड़ दिया
तोड़ दिया क्रम
रास्ता
मोड़ दिया
जोड़ दिया-और अर्थ:

और अब जाता हूँ-काँटों के पास
रोज-रोज दौड़कर
समझ कर, सोचकर-
काँटों के पास-

मिलते हैं फूल,
खिलते हैं फूल !

फूलों के पास-काँटों के ढेर।
काँटों के पास-फूलों का बास !
शब्दों का फेर है,
अर्थों का भेद है-
तुम जो कहते हो-"बदला हूँ मैं !"
जितना है-सत्य,
उतना असत्य !

शहर : गली

शमेन्द्र कुमार जड़वाल, तृतीय वर्ष (कला)

[जिन्दगी में एक ही समय पर एक निश्चित क्षेत्र-विशेष के वातावरण में कितनी छोटी-छोटी घटनाएं एक साथ घटती हैं. इनका सफल चित्र प्रस्तुत कविता में चित्रित किया गया है। छात्र-सम्पादक]

बंद खिड़कियों वाले,
कमरे में,
गाढ़ा, घुप अंधेरा,
आवाज,
सांस की और सिर्फ धड़कते दिल की।
टूटे शीशे से आती,
लैम्प-पोस्ट की एक बीमार
किरण!
बाहर,
पथराई गली पर,
दौड़ते हाथ ठेलों की,
गड़गड़ाहट।
आवाजें मिली, जुली।
और
टीन के बक्से
की दूकान से 'ठक-ठक' भरा मुहल्ला!
सामने वाले मकान से,
पैर पटकती आवाज,
(शायद कॉल-बेल बजी)
एक कुमारी का सिर
झाँका, देखा
खटाक।
(दरवाजा-बन्द)
उधर,
पड़ौसी हलवाई ने,
झूठे कुल्हड़ चाटते कुत्ते पर,
डंडा मार दिया,
और एक खूबसूरत-सी गाली!

चींऽ, चींऽऽ करता कुत्ता,
दुम दबा कर,
दौड़ लिया।
टींऽऽ टींऽऽ टींऽऽऽऽ।
और खिड़की के काँच पर,
तेज फ्लैश लाइटें,
दो क्षण।
कमरे में।
झोली सी खाट पर,
किसी ने करवट
बदल ली।
अंधेरा,
घुप,
और गाढ़ा होकर,
बढ़ रहा है, दौड़ रहा है,
गली पर,
आवाज,
सांस की,
धड़कन दिल की,
धक-धक!
(मिलीं-जुली भीड़ की आवाजें,
और उनके बीच,
चोट खाये उस
कुत्ते की आवाज भटकती है!)
'ठक-ठक' में डूबा
पथराया- मुहल्ला
खामोश अंधेरा
बस!

बिछुड़न और मिलन

भंवर लाल पारीक एम. ए., (पूर्वार्द्ध) हिन्दी

(एक बार जब प्राणों से प्राण का मिलन हो जाता है, तब दैनिक बिछुड़न में, प्राण, पुनर्मिलन के लिए कितने आकुल---आतुर हो जाते हैं। लेकिन. फिर भी न जाने किन स्थितियों में, चाहते हुए भी मिलन नहीं हो पाता, ऐसी ही एक स्थिति का चित्रण प्रस्तुत कविता में है। छात्र-सम्पादक)

जी मचल रहा आने को
अब रहा नहीं जाता
यहाँ घुटन-सी होती है
दिल भी पसीज जाता ।

चान्द्रमसी लेखा चन्द्र के पास
कुमुदिनी भी लिये हुये आस
प्रकृति भी जारही पुरुष के पास
हम भी मिल जाते आज काश!

प्रकृति मरण, विकृति जीवन
बिछुड़न मिलन के प्रतीक
दर्शन की इस भाषा के डर से
चाहते हुए भी जी
मिल नहीं पाता !

एक व्यंग्य

कन्हैयालाल काठेड़, तृतीय वर्ष, कला

(प्रस्तुत कविता में ऐसे छात्रों पर, व्यंग्य किया गया है, जो कॉलेजों में पढ़ने के लिए नहीं, हवाखोरी के लिए आते हैं. और जो अपने माता-पिता व कॉलेज के नाम पर कलंक होते हैं। विद्यार्थियों को ऐसे छात्रों से सचमुच दूर रहना चाहिए।-छात्र-सम्पादक)

तुम कॉलेज में पढ़ना सीखो।
छोड़ो अब भार किताबों का,
समझो यह डिग्री कॉलेज है ।
जहाँ एकमात्र फाइल में ही,
पूरी होती सब नॉलेज है ।
है हवा यहाँ की कुछ ऐसी,
जो देती मस्त बना जी को ।
तुम कॉलेज में पढ़ना सीखो !

यदि पढ़ने की जच जाये कभी
कक्षा में नोविल पढ़ा करो ।
जब नोट्स लिखाये प्राध्यापक,
तुम गीत प्रेम के पढ़ा करो !
ऐसा परिधान करो धारण,
कि कॉलेज के दादा दीखो ।
तुम कॉलेज मे पढ़ना सीखो !

तुम धूम्रपान करना सीखो,
सीखो फिल्मी गाने गाना ।
कहकर 'प्रजेन्ट सर' कक्षा से,
सीखो चुपचाप खिसक जाना ।
आ जाये नजर कोई छात्रा,
तो फाड़ गला 'या ·····हूँ चीखो !
तुम कॉलेज में पढ़ना सीखो !

जब आयें परीक्षायें समीप,
तो नोट्स कुँजियां ले आओ।
जो काम बने दो घन्टों में,
क्यों वर्ष समूचा घबराओ ?
कर कारतूस तैयार रात में,
सुबह कापियों में लिखो ।
तुम कॉलेज में पढ़ना सीखो !

स्मृति

राम किशोर शर्मा एम. ए., पूर्वार्द्ध (हिन्दी)

[अतीत के खण्डहरों की ओर देखने की अपेक्षा नूतन सृष्टि को खोज का भाव-साम्य प्रस्तुत कविता में द्रष्टव्य है। छात्र-सम्पादक]

स्मृति की रेख !
आ गईं तुम– किसलिए ?
किसने बुलाया ?

स्वप्न पाले थे–
नहीं देखे गए तब !
तोड़ डाले !
धूल कर डाले !
और चाहती हो-पुनः
तोड़ दूं—अस्तित्व को
व्यक्तित्व को
धूल बन जाऊँ ?
नहीं होगा !

बदल दी हैं दिशाएं,
भुलाया है-सभी बीता हुआ,
—सभी रीता हुआ,
त्याज्य होता है !

इसलिए-वह किरण जो चुक गई है-
साथ ले जाओ स्वयं के।
मैं, पुनः नूतन किरण
रौशनी से युक्त
खोज ही लूंगा !

अपनापन

शिवकरण एम. ए. पूर्वार्द्ध, (हिन्दी)

(अनजानी प्रेरणाएं जिन्दगी को किधर से किधर मोड़ देती हैं, और तब, आदमी के संकल्पों की क्या स्थिति होती है, उसका एक रूप प्रस्तुत रचना में द्रष्टव्य है। -छात्र-सम्पादक)

सोचा था:
जिन्दगी के लम्बे सफर में—
टीस और पीड़ा
गमगीन वादियां
टेढ़े-मेढ़े और ऊबड़-खाबड़ कंकरीले पथ
सभी तो आएंगे
लेकिन-

चलता रहूँगा
बढ़ता रहूँगा
लिए ओंठों पर मुस्कान
उफ तक न करेंगे—
तन और प्राण।
काश! तुम न मिलते।
पर तुम मिले—अनजानी भूल-से
स्नेह
ममता

अपनापन लिए—फूल से
लगे सँवारने-पंथ
संकल्पों का जैसे हो गया अन्त
हृदय की गहन कन्दराओं में छिपी हुई पीड़ा और टीस
सिसकीं
मचलीं
और दब गया-दर्द
फिर फूट पड़ा, आँखों की राह
मैं चुप हो गया,
भर के सिर्फ—आह !

अभिलाषाएँ

किशनसिंह यादव, तृतीय वर्ष (कला)

(अभिलाषा जब दुरभिलाषा बनने लगती है, वह त्याज्य होती है, इसलिए कि तब आदमी की आदमियत बिखरने लगती है। लेकिन जब अभिलाषा जिन्दगी को अर्थ प्रदान करने के लिए उपस्थित होती है, अभिनंदनीय होती है। प्रस्तुत कविता में पहले दुरभिलाषा का और फिर अभिलाषा का चित्रांकन है। -छात्र-सम्पादक)

इच्छा तो है बहुत, मगर कम पूरण होती,
लुप्त-प्राय: हो जातीं, कब सम्पूरण होती ?
नन्हें की तो अभिलाषा है, पढ़ लिख जाऊं,
लगे नौकरी अच्छी-सी, घर वेतन लाऊं।

नौजवान की इच्छा है शादी हो जाए,
गोरी सुन्दर मृगनयनी मुझ को मिल जाए।
खुश हो हो कर चरण पखारें राम के,
क्या परवाह है, रहें नहीं यदि काम के!

वृद्धों की तो इच्छा है—अब राम उठाए,
सुखी होय जर्जर शरीर अब सहा न जाए,
बहुत जी चुके राम तुम्हारे श्रीचरनन में,
शीघ्र बुलाओ रघुबंशी यम के महलन में।

ऊंचे कहते-नाथ! हमें अरु ऊंचा कर दो,
नोटों से तो भरी तिजोरी, हीरे भर दो।
उल्टे-सुल्टे उल्लू भगवन सीधे कर दो,
ब्लैक से या किसी तरह भंडारे भर दो।

सारी दुनियां प्रभु से ऐसा ही कहती है,
इसीलिये वह आज विकल बन कर रहती है।
मेरी भी कुछ अभिलाषाएं, हे गिरिधर,
अगर सुनो तो अर्ज करूं तुमसे मुर्लीधर।

पहली इच्छा यही कि वय यदि आधी भी हो,
हो मानव हितमात्र, योग्य सेवा के ही हो।
सब दुखियों के दु:ख प्रभु मुझ पर आ जावें,
पर दुनियां में दु:खी नहीं मुझ को नर पावें।

एक दूसरी इच्छा है, हे मेरे स्वामी,
मानव सचमुच हो मानवता का अनुगामी।
प्रेम नगर हो एक किनारा हर करती का,
और प्रेम ही थामे बस, आंचल धरती का।

और आखिरी इच्छा है, मैं जब जग छोड़ूँ,
किसी तरह से कफन तिरंगे का ही ओढ़ूँ।
भूल नहीं पाऊँ अन्तिम क्षण नाम तुम्हारा,
नहीं चाहिए फिर कोई भी अन्य सहारा।

उद्‌बोधन

जयप्रकाश गुप्त, तृतीय वर्ष विज्ञान

(कवि की कलम और वाणी की शक्ति का ही प्रभाव है, जो नव-परिणीता के प्रेम में डूबे युवक को सब कुछ छोड़ कर, देश की सीमा पर चढ़ आए दुश्मन पर भूखे शेर की तरह टूट पड़ने की प्रेरणा देती है। कवि की ऐसी ही ओजमयी वाणी प्रस्तुत कविता में है।
-छात्र-सम्पादक)

हुँकार उठो ऐ युवक देश के
दुश्मन को सबक सिखादो !
जो पौरुष को ललकार रहा
गीदड़-भभकी दिखलाता है
विद्वेष-भाव से राष्ट्र-प्रगति
पर जो कुदृष्टि उठाता है
खोलो तुम तन्द्रा के कपाट
जाओ जय घोष मचा दो
दुश्मन को सबक सिखा दो !

भारत की आत्मा की पुकार
है आग धधकती सीने में
ऐ वीर लाल, प्रण करो, उठो
लो पुण्य आज इस जीने में।
वैरी के दुस्साहस का
मद-भंजन कर, मजा चखा दो
दुश्मन को सबक सिखा दो !

स्मरण करो अपना अतीत
ऋषियों, मुनियों की तपोभूमि
फिर वीर शिवा, राणाप्रताप
लक्ष्मीबाई की जन्म भूमि
गांडीवों की टंकार पुनः कर
विश्व-कीर्ति का ध्वज फहरा दो
दुश्मन को सबक सिखा दो !

फिर विजय-पताका फहरावो
'माँ' की जय-गाथा गुंजित हो
सब थकें, मगर छू सकें नहीं
तुम से ऐसा यश संचित हो
गौरवशाली हो राष्ट्र महान
अरि का अस्तित्व मिटा दो
दुश्मन को सबक सिखा दो !

आदमी क्या है ?

सतीश कुमार, प्रथम वर्ष (कला)

('आदमी क्या है ?' दर्शन की सीमाओं में पड़ कर भी, यह प्रश्न, पूरी तरह उत्तरित नहीं हो पाया है। इसी प्रश्न के उत्तर का ही एक सन्दर्भ इस छोटी-सी कविता में प्रस्तुत किया गया है।
-छात्र-सम्पादक)

आदमी क्या है ?
मोम है,
दुख दर्द में पिघलता है।
आग है,
सूरज की तरह जलता है।
आदमी,
मुहब्बत में सिर तक झुका देता है,
जिसकी नफरत से खुदा तक का दिल दहलता है !

कॉलेज का गुलदस्ता

धन्ना प्र० शर्मा, प्रथम वर्ष, कला 'ब'

[गुलदस्ते में सजते हैं, वे फूल--जो खिल चुके हैं, और जिनकी महक से कमरा भर जाता है। प्रस्तुत गुलदस्ते और उसके फूलों में, कॉलेज और कॉलेज के आचार्य, उपाचार्य व विभागाध्यक्षों का सन्दर्भ है। गुलदस्ते में स्थान पाने की दृष्टि से वे फूल, जिनमें आकर्षण, सौन्दर्य और मधुर गन्ध है, केवल आकार की लघुता के कारण उपेक्षणीय नहीं हैं। कॉलेज को उद्यान का प्रतीक देकर, उसमें के ऐसे सभी फूलों के रूप और सुगन्ध के प्रस्तुतीकरण के सन्दर्भ में, कवि-छात्रों से आगामी पत्रिका के लिए वर्तमान छात्र-सम्पादक की एक बड़ी अपेक्षा है। क्या आप उसे पूरा करेंगे ? --छात्र सम्पादक]

गुलदस्ता कॉलेज का, प्रस्तुत है श्रीमान
महक सभी जन लीजिये, इसकी ससम्मान
आचार्य श्री दत्तात्रेय जी दाऊद गुलिस्तां के राजा
है कमल बीच श्री कृष्णराव, जिसकी सौरभ निशदिन ताजा
मन मोहन बसे मोगरे में, समाज-शास्त्र के ज्ञाता हैं
रवि शंकर बसे रेलिया में, जो अंग्रेजी के त्राता हैं
माधव को रुचती मौलश्री, हिन्दी की बिन्दी माथे पर
संस्कृताध्यक्ष श्री दिनेश चन्द्र, डेफोडिल में रहते सत्वर
हैं अर्थशास्त्र के पारंगत, विश्वेश्वर नाथ सदांविन में
मोतिया मनोहर को प्यारा, भूगोल प्रसारे जनगण में
रत्नाकर चित्रकलाधारी, बस गये रातरानी में ही
जोशी जी जयमाला धारे वाणिज्य विभाग गहे ये ही
कैलाश कुसुम हैं खिलते से, लेखा-जोखा भरपूर करें
ओंकार अरुण मुख में राजे, शोभा जो गणित-विभाग की हैं
अलबेले अजय अनार पुहुप, विज्ञान रसायन-राग के हैं
भौतिक-विज्ञान-शिरोमणि, श्री पराँजपे सौरभधारी
सुन्दर सुखधाम सुधीर, सुमन जन्तु-विज्ञान जिन्हें प्यारी
श्री कृष्णचन्द्र केसर-क्यारी, विज्ञान-वनस्पति के पंडित
जयनारायण का जश गूंजे जो, कृषि संकाय करे मंडित
यह मुश्क मधुर पशु पालक है, छौंकर महेन्द्र सिंह दुग्ध-विज्ञ
फूलों में फूल गुलाब अजब, जिसको ना जाने कभी अज्ञ
चम्पा है सुरभित श्रीधर से, जिनकी क्रीडायें बांकी हैं
बालक धन्ना हो अमर सदा, लख यह फूलों की झाँकी है
हरा-भरा निश-दिन रहे, रहे सवाई शान
गुलदस्ता खिलता सदा रखे, श्री भगवान

रेडार-यन्त्र

जयप्रकाश गुप्त, तृतीय वर्ष, विज्ञान

[१९६५ के भारत-पाक युद्ध के सन्दर्भ में 'रेडार' शब्द से प्रायः सभी परिचित हो गए होंगे कि रेडार-यंत्र हवाई हमले की पूर्व-सूचना और उसके निराकरण में कितना सहायक होता है। प्रस्तुत लेख में, इस महत्वपूर्ण यंत्र का स्वरूप, उसकी कार्य-प्रणाली और उपयोगिता बताई गई है।
—छात्र-सम्पादक]

'रेडार' शब्द की उत्पत्ति अंग्रेज़ी वाक्य 'रेडयो डिटेक्शन एन्ड रेन्जिग' से हुई है। 'रेडियो डिटेक्शन' से तात्पर्य है कि रेडार वस्तुओं का पता लगाने में तथा स्थान-निर्धारण में रेडियो-तरंगों का उपयोग करता है। 'रेन्जिग' दूरी मापन को कहते हैं। विभिन्न वस्तुओं की परास (Range) निकालने के अतिरिक्त रेडार यह भी बताता है कि वस्तु किस विशेष दिशा में स्थित है। रेडार-सेंट में एक विशेष प्रेषी, एक एरियल, एक संग्राही तथा एक निर्देशक होता है। वस्तुओं का पृथक्करण एक विशेष संकेत के प्रसारण द्वारा किया जाता है, जिसमें प्रायः रेडियो-तरंगों के स्पंदों-(Pulses) अथवा क्षणिक लहर का उपयोग होता है। प्रेषी, रेडियो-ऊर्जा को उत्पन्न करता है तथा एरियल उस ऊर्जा को प्रायः एक पतली रश्मि के रूप मे प्रेषित करता है। एरियल घूर्णन करते रहते हैं, जिसके कारण रश्मि रेडार के चारों और के क्षेत्र के ऊपर घूम जाती है। इन रेडियो-तरंगी रश्मियों के भीतर पड़ने वाली सभी वस्तुएँ थोड़ी सी ऊर्जा, रेडार-सेट की ओर परावर्तित कर देती हैं। जिस प्रकार साधारण रेडियो-संग्राही, प्रेषण केन्द्र से सीधे आने वाले संकेतों से समस्वरित हो कर उनका संग्रहण करता है, उसी प्रकार रेडार संग्राही भी परावर्तित संकेतों को पकड़ने के लिए समस्वरित (टयूब) रहता है और उन संकेतों को निर्देशक के पास पहुँचा देता है। वहाँ पर विशेष इलेक्ट्रोनिक परिपथ उस निर्देशन-चित्र की उत्पत्ति करते हैं, जिसमें रेडार-सेट के चारों ओर की वस्तुओं के स्थान दिखाई देते हैं।

रेडार-सेटों की रचना विविध उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भिन्न होती है, परन्तु उसमें मुख्य अवयव प्रेषी, संग्राही ऐरियल तथा निर्देशक अवश्य ही होते हैं। साथ ही एक काल-निर्धारक तथा तुल्य-कालक की भी महत्वपूर्ण भूमिका है, जो अन्य अवयवों में होने वाली घटनाओं के अनुक्रम को नियंत्रित करता है। रेडार सेट का मुख्य भाग प्रेषी में, साथ ही तुल्य-कालक कार्य करता है। ये तुल्य-कालक प्रति सैकिंड प्रेषित स्पंदों की संख्या निर्धारित करते हैं तथा प्रेषी और निर्देशक को भेजे जाने वाले स्पंदों की तथा अधिक जटिल तंत्रों के लिए आवश्यक अन्य स्पंदों की उत्पत्ति करते हैं। यह कार्य-विशेष स्पंद-उत्पादक परिपथों मे नियोजित साधारण रेडिया नालियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

अधिकांश रेडार प्रेषियों में जिस दोलक का उपयोग होता है, उसे 'मैगनीट्रोन' कहते हैं। लघु रेडियो-तरंगों को उत्पन्न करने का यह उपकरण एक विशेष प्रकार की निर्वात नली होती है, जिसमें उच्च आवृति वाली शक्ति वृहद्द मात्रा में उत्पन्न करने की क्षमता होती है।सूक्ष्म आकार वाला यह मैगनीट्रोन एक स्पंद के अवधि काल में कई लाख वाट तक की शक्ति उत्पन्न कर सकता है। ऐसा सम्पूर्ण प्रेषी बहुत ही छोटी जगह में स्थापित किया जा सकता है, जब कि ५०,००० वाट वाला रेडियो स्टेशन एक अच्छे लम्बे-चौड़े कमरे को पूरा भर देता है। 'रेडार मैगनीट्रोन' मुख्यतः एक तांबे के गुटके का बना होता है, जिसमें कई छिद्र अथवा कोटर होते हैं। इस ढांचे को ढकने वाली खोल के भीतर निर्वात होता है। ढांचे के केन्द्र पर कैथोड लगा होता है, जो मुक्त इलैक्ट्रोनों के स्रोत का कार्य करता है। एक लघु-वैद्युत-तापक द्वारा इलैक्ट्रोन उसी प्रकार 'उबालकर' बाहर किए जाते हैं, जिस प्रकार कैथोड-रश्मि नलियों अथवा साधारण रेडियों-नलियों में किए जाते हैं। परन्तु अत्यधिक स्पंद-शक्ति का उत्पादन करने के लिए,

मैगनीट्रोन के कैथोड को बड़ी संख्या में इलैक्ट्रानों का उत्सर्जन करना पड़ता है। जब सर्पिल गति वाले इलैक्ट्रोन कोटर-छिद्रों के सामने से सनसनाते हुए गुजरते हैं, तब वे कोटरों में वैद्युत-कम्पन आरम्भ करने का प्रयत्न करते हैं। मैगनीट्रोन के समस्त छिद्र अति उच्च प्रत्यावर्ती वोल्टता उत्पन्न करने के लिए टीम की तरह मिलकर कार्य करते हैं। एक कोटर से निकला हुआ छोटा सा कुन्डल (लूप) मैगनीट्रोन के भीतर से उत्पादित शक्ति को बाहर ले जाता हैं। वहाँ से संचरण लाइनें आकाश में प्रेषणार्थ इस शक्ति को एरियल में पहुँचा देती हैं। एरियल स्पंदों को पतली रश्मि के रूप में प्रेषित करता है। यह एरियल, जो कि प्रायः कटोरे के आकार का होता है, रश्मि के केन्द्र से लौटने वाले प्रतिनादों के लिए सर्वाधिक सुग्राहक होता है।

युद्धरत-रेडार

रेडार-सेटों का उपयोग सर्वप्रथम जर्मनी ने १९३९ में ब्रिटेन के विरुद्ध सफलतापूर्वक कर विश्व में ख्याति प्राप्त की थी। आजकल इनका प्रयोग वायुसेना, जलसेना व खगोल-विज्ञान में विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। उसी के अनुरूप उनकी रचनाएँ की जाती हैं। कुछ सेट भूमि या जलयान पर लगे होते हैं और आकाश में वायुयानों का निरीक्षण करते रहते हैं, कुछ अन्य जलयानों का पता लगाने के लिए पानी की सतह का अन्वेषण करते रहते हैं। विमानों में बैठाए हुए रेडार-सेट चालन के हेतु विभिन्न भूमि-चिन्हों की तलाश करने के लिए भूमि और जल की सतहों का सर्वेक्षण करते हैं। विशेष प्रकार के सैनिक और नाविक-सेट वायुयानों तथा जलयानों की गतिविधि का इतना यथार्थतापूर्वक प्रेषण करते हैं कि गोलाबारी के लिए पर्याप्त सूचना मिल जाती है। कुछ सेटों में तो यहाँ तक व्यवस्था रहती है कि तोप का निशाना स्वतः ही ठीक हो जाता है।

कुहरे अथवा अँधेरे में

रेडार-सेट में माइक्रो रेडियो-तरंगों का उपयोग होता है, जो शक्तिशाली सर्चलाइट की तरह आकाश में रश्मि के रूप में प्रेषित होती है तथा वायुमंडलीय विकारों में निर्बाध यात्रा करती हैं। सर्चलाइट को फेल कर देने वाले अंधेरे में भी इससे प्रत्येक वस्तु अक्षरशः दीख सकती है।

वस्तुएँ और उनका परिपार्श्व

रेडियो-तरंगें पूर्णता प्रकाश की तरह ही परावर्तित होती हैं। विभिन्न वस्तुएँ और उनके आसपास के वातावरण से प्राप्त परावर्तनों के आधार पर ही वस्तुओं के आकार, गति आदि के बारे में पता चल जाता है। जल की सतह से प्राप्त परावर्तन क्षीण होते हैं तथा पहाड़ों की नोकों, चट्टानों और शहरी मकनादि से प्रबल परावर्तन लौटते हैं, जिनसे शहर, जल आदि की उपस्थिति का अनुमान लग जाता है, क्योंकि भूमि-स्थित वस्तुओं से प्राप्त परावर्तन, नीचे उड़ने वाले विमानों के परावर्तन को अदृश्य कर सकते हैं, जैसा कि विमानों की अपेक्षा इमारतों से प्राप्त परावर्तन तीव्र होते हैं, रेडार प्रायः नीचे उड़ते, शहरी सीमा में विमानों को पकड़ने में असफल हो जाता है। इसी प्रकार रेडार तरंगें पृथ्वी की सतह के भीतर नहीं घुस सकती, पानी और भूमि दोनों लघु-रेडियो-तरंगों का परावर्तन कर देते हैं। दृष्टि रेखा से नीचे होने के कारण क्षितिज से अधिक दूर की वस्तुएँ अभिव्यक्त नहीं हो सकतीं। ये समस्त जानकारी वातावरण की प्रत्येक स्थित का अवलोकन कराने में सहायक है। अधिक दूरी पर वस्तु होने पर, रश्मि इतनी ज्यादा फैल जाती है कि उसकी पूर्ण ऊर्जा का एक न्यूनतम अंश ही उस वस्तु पर पड़ता है, अतः परावर्तन क्षीण होते हैं। जैसे-जैसे वस्तु रेडार से दूर बढ़ती जाती है, उससे प्राप्त परावर्तनों की तीव्रता कम होती जाती है। अतः दूरस्थ विमानों को चित्रित करने के लिए रेडार से पतली रश्मि डाली जाती है और उस पर तरंगें अधिक संकेन्द्रित होने से प्रतिनाद प्रबल हो जाते हैं।

दूरी और दिशा-निर्धारण : किसी वस्तु की दूरी का निर्धारण रेडियो-तरंगों के आने-जाने के समय को नापकर किया जाता है। उसकी दिशा का ज्ञान एरियल द्वारा तीव्रतम प्रतिनाद-संग्रहण के लिए आवश्यक ऊर्जा-रश्मि के प्रेषण की दिशा को देखकर किया जाता है। रेडियो-प्रतिनादों में कालान्तर का मान अति न्यून होता है। ये एक सैकिन्ड में १८६३०० मील चल लेती हैं। अर्थात्

यदि कोई हवाई जहाज रेडार-सैट से १ मील की दूरी पर स्थित हो, तो रेडियो-तरंगें उसके पास एरियल से रवाना होने के ५·३७५ माइक्रो सैकिन्ड पश्चात् पहुँच जायेंगी। लौटकर आने तक कुल इसका दुगना समय लगेगा। १ गज आने-जाने की यात्रा का समय ·००६१ माइक्रो सैकिन्ड होता है और १००० गज दूर की वस्तु तक आने-जाने का समय ६०१ माइक्रो सैकिंड होता है। इस प्रकार विभिन्न यंत्रों से समयान्तर काल ज्ञात कर वस्तु की दूरी ज्ञात कर ली जाती है। यदि कोई वस्तु स्पंद की आधी लम्बाई से कम दूरी पर स्थित हो, तो प्रेषित मूल स्पंद प्रतिनाद के कुछ न कुछ अंश को तो दबा ही देगा। वायुयान को रेडार-एरियल से ५०० फीट की दूरी पर मान लिया है। १ माइक्रो सैकिंड वाले स्पंद के लिए यह लघुत्तम परास है।

वस्तुओं का पृथक्करण : रेडार-निर्देशक, दो निकटवर्ती वस्तुओं को उसी अवस्था में पृथक्-पृथक् दिखा सकता है, जब उनसे प्राप्त प्रतिनाद पृथक् और स्पष्ट हों। जब दोनों वस्तुएँ साथ ही रेडार-रश्मि के अन्तर्गत हों, तो उनका पृथक्करण स्पंद की कालावधि पर निर्भर करता है। अधिक समीप की वस्तुओं को पृथक निर्दशित करने के लिए स्पंद की कालावधि घटा दी जाती है।

इस प्रकार रेडार आधुनिक युग में एक अत्यंत महत्वपूर्ण हथियार है। जिस देश की रेडार-व्यवस्था जितनी कुशल और सुदृढ़ होती है, वहाँ की सीमाएं अधिक सुरक्षित रह सकती हैं। वैसे रेडार शान्ति काल में भी विभिन्न उपयोगी अन्वेषणों के लिए प्रयुक्त होता है। चन्द्रमा के बारे में विभिन्न प्रकार की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने में इसने बहुत सहयोग किया है।

●●

आदतों का महत्व

प्रबोध कुमार पाटोदी, प्रथम वर्ष, कला

[एक कार्य को निरन्तर करते रहने से उसे करने की आदत पड़ जाती है। अगर कार्य अच्छा है, तो आदतें भी अच्छी होंगी और बुरा होने पर बुरी। निस्सन्देह जीवन में अच्छी आदतों की उपयोगिता व्यक्ति और समाज, दोनों के लिए होती है। इसलिए आदतों का बड़ा महत्व है और इसी महत्व को प्रस्तुत लेख में बताया गया है। छात्र-सम्पादक]

जब हम किसी काम को बराबर करते हैं, तो हमारा मन उस बात को ग्रहण कर लेता है, और शरीर का व्यापार उसी के अनुकूल होने लगता है, क्योंकि मन ही शरीर को चलाता है। जैसे हमें हॉकी खेलने जाना है, तो पहले इसका विचार हमारे मन में उठेगा। विचार आने पर हम जाने की तैयारी करेंगे, कपड़े पहनेंगे, जूते पहनेंगे और हॉकी लेकर घर से निकलेंगे। तब चलकर खेल के मैदान में पहुँच कर खेल सकेंगे। अगर विचार ही न उठे, तो काम कैसे होगा?

किसी एक ही काम का अभ्यास करते-करते आदतें बन जाती हैं। वे मन में इतनी गहरी बैठ जाती हैं कि उस काम को करने के लिये न तो हमें सोचना ही पड़ता है, और न शरीर के साथ खेंच-तान ही करनी पड़ती है।

मान लो, कि हम देर से सोकर उठते हैं। अब हमने यह तय कर लिया, कि हम प्रतिदिन प्रातःकाल ५ बजे उठा करेंगे। आरम्भ में हमें शरीर को इस विचार के अनुसार चलाना पड़ेगा। घड़ी का अलार्म लगा कर या अपनी माँ से कह कर कुछ दिन हमें पाँच बजे उठने का अभ्यास करना ही पड़ेगा। रोज-रोज ऐसा करते रहने से हम देखेंगे कि कुछ ही दिनों में बिना विशेष प्रयास किए हम पाँच बजे जाग उठते हैं। उस समय वह हमारी आदत में शामिल हो जायगा।

इन आदतों का हमारे जीवन में बड़ा महत्व होता है। बचपन ही एक ऐसी उमर है, जब हर बात के अंकुर हमारे मन में जमते हैं। जो आदतें इस उमर में पड़ जाती हैं, वे आखिर तक कायम रहती हैं। इस उमर में पड़ी हुई खराब आदतों को दूर करने के लिये बड़ा प्रयत्न करना

पड़ता है। इसलिए हमें अच्छी आदतें ही डालनी चाहिए, क्योंकि अच्छी आदतें ही हमारी उन्नति की सीढ़ियाँ हैं। जब ये आदतें अच्छी होती हैं, तो सद्गुण कहलाती हैं। और इन्हीं से व्यक्ति की महानता आँकी जाती है।

एण्ड्रयू जानसन अमेरिका के प्रेसीडेण्ट हो गए थे। वे पहले दर्जीगीरी का काम करते थे। मगर उनमें बहुत सी अच्छी आदतें थीं। दर्जीगीरी में भी वे लगन के साथ अच्छा काम करते, समय की पाबन्दी रखते, और मित्रों के साथ अच्छा व्यवहार करते थे। इन्हीं आदतों के कारण वे बढ़ते-बढ़ते एक दिन प्रेसीडेण्ट के महान पद पर पहुँच गए।

एक बार वह वाशिंगटन नगर में व्याख्यान दे रहे थे। एक व्यक्ति ने उन पर ताना कसा, कि "क्या दर्जीगीरी की बात भूल गए?"

एण्ड्रयू साहब ने बुरा नहीं माना और उत्तर दिया—"महाशय, मैं दर्जीगीरी की बात नहीं भूल सकता, क्योंकि उस पेशे से मैंने बहुत उम्र तक गुजर की है। अब मैंने वह पेशा छोड़ दिया है, तो भी उस समय की अच्छी आदतें मुझ में आज भी मौजूद हैं। मुझे यह कहने में कोई शर्म नही हैं, कि दर्जीगीरी के ही गुणों ने मुझे इस स्थान तक पहुँचाया है।"

अब आप समझ गए होंगे, कि आदतें ही व्यक्ति को बड़ा बनाती हैं। इसलिए सदैव अपनी आदतों के प्रति सावधान रहिए, और छोटे-छोटे कामों में भी अपनी आदतों को खराब नहीं होने देना चाहिए।

छोटे-से-छोटा जो भी काम हाथ में लो, उसे अच्छे-से-अच्छा करिए। यह मत सोचिये कि अमुक काम छोटा है, इसे झटपट, चाहे जैसे, कर डालें, बड़े काम को ढंग से करेंगे। छोटे काम को भी योग्यतापूर्वक करने की आदत बनाइये। इसके बाद ही आप बड़े काम ठीक तरीके से कर सकेंगे।

समय की पाबन्दी करिये। सो कर उठना, पढ़ना, नहाना-धोना, कॉलेज जाना, खेलना-कूदना, सब समय पर करिये। हर काम का समय निश्चित कर लीजिये। उसी के अनुसार काम करिये। यह आपके खुद करने की बात है। घरवाले या दूसरे लोग जब आपका समय जान जायेंगे, तो विश्वास रखिये, कि वे भी आपसे समय के अनुसार ही काम लेंगे। किसी के यहाँ जाने का, किसी से अपने घर मिलने का सदैव निश्चित समय दीजिए, और जो समय आपने उसे बताया है, उसकी दृढता से पाबन्दी कीजिये। यदि आपको उसमें, कष्ट भी होता है, तो होने दीजिये। समय की हमेशा कीमत करिये! खोया हुआ समय दुबारा आपको प्राप्त नहीं होगा।

सद्व्यवहार का अर्थ है, दूसरे के प्रति अच्छा व्यवहार। जो बात या आचरण आपको बुरा लगता है, उसे दूसरे के प्रति मत करिये। नम्रता और मधुर भाषण करना सीखिये।

यदि आपमें उक्त तीनों सद्गुण मौजूद हैं, तो उन्हें और उन्नत बनाइये, और यदि इनका अभाव है, तो अपनी आदत में इन्हें शामिल करिये। यह बिना पैसे के रत्न हैं, जो हर किसी को थोड़े ही प्रयास से प्राप्त हो सकते हैं, और प्राप्त हो जाने पर इनसे जी-चाही वस्तु खरीदी जा सकती है।

●●

"आदत या तो मनुष्य की सबसे अच्छी सेविका है या सबसे बुरी मालकिन"।

—एमर्सन

डॉ० राममनोहर लोहिया

लखपतराज भण्डारी, एम० ए० (पूर्वार्द्ध) भूगोल

(युग-युग से शोषित और पीड़ित मानव के हितों की वकालत करने वाले और उनके हकों के लिए लड़ने वाले व्यक्तित्व बहुत कम हुए हैं। जो हुए हैं, उनमें भारत के समाजवादी नेता स्वर्गीय डा० राम मनोहर लोहिया का नाम भी प्रमुख है। प्रस्तुत लेख में, डा० लोहिया के जीवन और जीवन-दर्शन का चित्र है।
---छात्र सम्पादक)

जीवन पर्यन्त शोषित एवं पीड़ित मानव की सशक्त वकालात करने वाले मसीहा डॉ० राममनोहर लोहिया गत ११ एवं १२ अक्टूबर के संधिकाल में सदा के लिये हमसे छीन लिये गये !

क्रूर काल ने डॉ० लोहिया के रूप में एक ऐसा व्यक्तित्व इस धरती से उठा लिया, जिसकी कि आज भारत को ही नहीं, दुनियां को आवश्यकता थी। सदा शोषित एवं पीड़ित मानव के हितों की वकालत करने वाले मसीहा डॉ० राममनोहर लोहिया का सम्पूर्ण जीवन एक ऐसे अनूठे संघर्ष का इतिहास है, जिसका उदाहरण शायद अन्यत्र देखने को न मिले।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के महत्वपूर्ण विषयों पर दार्शनिक लोहिया न केवल खुलकर बोलते ही थे, वरन जहां भी और जब भी सम्भव हुआ, तत्-सम्बन्धी जन आन्दोलनों का नेतृत्व करने अथवा स्वयं सत्याग्रही बनने में भी कभी पीछे न रहे। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में विचारक लोहिया ने जिस स्पष्टवादिता का परिचय दिया, उसे क्या कभी भुलाया जा सकता है ?

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से अच्छी तरह परिचित होते हुए भी डॉ० लोहिया आजीवन विशुद्ध भारतीय बने रहने में ही गौरव अनुभव करते रहे। एक बार उन्होंने कहा था– "गुलामी की तमाम यादगारें खत्म किए बिना हम मानसिक गुलामी से उऋण नहीं हो सकते। अंग्रेजी हमारी आजादी पर एक कलंक है इसे मिटाए बिना हम आजादी से दूर हैं ।"

शासन में जमे दो-तीन लाख स्वार्थी लोगों की अंग्रेजी भक्ति के प्रति उनके दिल और दिमाग में नफरत की आग थी। तभी तो (चौखम्भा) के १४ मार्च ६७ के अंक में उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा था– "सामन्ती अंग्रेजी भाषा का तिरस्कार किए बिना लोकनीति निखरेगी नहीं। सार्वजनिक जगहों पर अंग्रेजी गिट-पिट करने वालों का तिरस्कार करो। हिन्दुस्तान के साधारण लोग अपने अंग्रेजी के अज्ञान पर लजाएं नहीं, बल्कि घमण्ड करें। इस सामन्ती भाषा को उन्हीं के लिए छोड़ दें, जिनके मा-बाप अगर शरीर से नहीं तो आत्मा से अंग्रेज रहे हैं।"

सन् १९६३ के उपचुनाव में प्रथम बार विजयी बनने वाला यह संसद-सदस्य चार वर्ष की अल्पकालीन अवधि में ही एक ओर जहां सतारूढ़ दल के लिये सिरदर्द बन बैठा वहां दूसरी ओर आम लोगों की आशाओं का केन्द्र भी बन गया। सम्भवतः संसद के इतिहास में डॉ० साहब पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने आप जनता के हितों की पैरवी करते समय अपने मान-अपमान, यश-अपयश, हानि-लाभ की तनिक भी परवाह नहीं की। वे निडर और निर्भीक बनकर जागरूक जन-प्रहरी के रूप मे तथ्यों और आंकड़ों के आधार पर शासन-संचालकों की खुलकर आलोचना करते रहे।

डॉ० लोहिया, उन गिने-चुने व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने राजनीति को पेशा समझ कर नहीं, वरन् सेवा की भावना से अपनाया। उन्होंने अन्याय के आगे झुकना और रुकना तो कभी सीखा ही नहीं। परिस्थितियों से समझौता करके चलना उनके लिए प्रिय नहीं था। आजीवन अविवाहित रहने वाले डॉ० साहब ने अपने बारे में केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझा– "आज मेरे पास कुछ नहीं है, सिवाय इसके कि हिन्दुस्तान के साधारण लोग और गरीब सोचते हैं कि मैं शायद उनका आदमी हूं!" डॉ० साहब के उपरोक्त कथन की सत्यता तो इसी बात से आंकी जा

जा सकती है कि उनकी १० दिनकी बीमारी के दौरान दिल्ली के विलिंग्डन अस्पताल में उन्हें देखने आने वालों में इसी तबके के लोग, संख्या में, सबसे अधिक थे। बीमारी के दौरान जब भी उन्हें होश आया, वे यही कहते पाये गए– "करोड़ों का क्या होगा ? गरीबों का क्या होगा ? किसान-मजदूरों का क्या होगा ? इतना ही नहीं एक बार समाजवादी लोहिया जी ने अपने को एक दर्जन डाक्टरों से घिरा देखकर कहा– "एक आदमी के लिये इतने डाक्टर ! अगर करोड़ों के लिये हों तब न बात बने !" कितनी चिंता, वेदना एवं दुःख-दर्द था-उनके दिल में, दबे-पिसे आम लोगों के प्रति !

बैंक-बेलेन्स बनाना तो दूर रहा, ५७ वर्षीय डॉ० साहब रहने के लिये अपनी झोंपड़ी भी नहीं बना पाए। श्री गोलवलकर जी के शब्दों में "वे सदैव राष्ट्र का हित सर्वोच्च मानते थे।" तो बख्शी गुलाम मुहम्मद के शब्दों में, "वे दूसरों के लिये जीने वाले व्यक्ति थे।" इतना ही नहीं राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन के अनुसार "महान् देश-भक्त और जीवन भर विद्रोही लोहिया जी ने अपना जीवन समाज के पिछड़े वर्ग के लिये उत्सर्ग कर दिया। डॉ० लोहिया के बिना देश का सार्वजनिक जीवन सूना-सा हो गया।" अतः क्रान्तिकारी लोहिया की देश-भक्ति में लेशमात्र भी संशय की गुजांइश नहीं है।

विशुद्ध राष्ट्रीयता के पोषक लोहिया जी ने १९५२ में सोशलिस्ट पार्टी के पचमढ़ी सम्मेलन में कहा था– "नीतियों को उधार लेने की आदत समाजवादियों को छोड़ देनी चाहिए। वास्तव में पश्चिमी पूंजीवाद और कम्यूनिज्म एक ही सभ्यता के दो अंग हैं।" उनकी इस स्पष्टवादिता की वजह से आजादी की लड़ाई लड़ने वाले इस सिपाही को अपने ही आजाद मुल्क में अपने ही निकटतम लोगों से भी कभी-कभी तो अकेले ही जूझना पड़ा।

समाजवाद का कट्टर और प्रभावशाली हिमायती, गरीब मजदूरों एवं किसानों का हितैषी, भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पोषक, महान् विचारक, क्रान्तिकारी सुभाष एवं गांधी का पथानुगामी, महान् दार्शनिक और राष्ट्र प्रेमी-डॉ० लोहिया इतना सब कुछ सम्भवतः इसीलिए कर पाए, क्योंकि वे इस मिट्टी से, इस मिट्टी के लिये बने थे !

डॉ० लोहिया चाहते, तो अपना जीवन आसानी से ऐशो-आराम से बिता सकते थे। लेकिन उन्होंने गरीब और पीड़ित मानव को ऊपर उठाने के संघर्ष में अपने को जीवन भर झोंके रखा, और अन्त समय में भी इसी चिन्ता को लेकर इस दुनियाँ से प्रस्थान किया। ऐसे महामानव को हमारा कोटि २ प्रणाम ! ●●

"यदि हिन्दू ही हिन्दुत्व का रक्षण नहीं करते, यदि भारत के अपने पुत्र ही अपने धर्म के प्रति दृढ़ नहीं रहते तो इसकी रक्षा कौन करेगा ? केवल भारत ही भारत की रक्षा कर सकता है। भारत तथा हिन्दुत्व एक हैं।"

—डा. श्रीमती ऐनीबेसेंट

हास्य एकांकी—

पर्दा उठने से पहले

नगेन्द्रकुमार, द्वितीय वर्ष विज्ञान

[दुःख में सुखानुभूति और सुख में आनन्दानुभूति के लिए हास्य का सहारा कम महत्वपूर्ण नहीं होता। प्रस्तुत हास्य एकांकी को स्टेज पर पर देखकर संभवतः उतना आनन्द प्राप्त न होता, जितना इसे पढ़कर होता है। —छात्र सम्पादक]

पात्र— हरि—नाटक का प्रबन्धक,
श्याम, नरेश—नाटक में पार्ट करने वाले
हरि के मित्र,
शीला—आधुनिक फैशनपरस्त युवती
नौकर व एक दो व्यक्ति

(मेक-अप रूम में खूब शोर हो रहा है। सभी अपने अपने को सजाने सँवारने में लगे हैं। कुछ सामान गिरने, कुछ खिसकाने की आवाज आती है। कुछ व्यक्ति व एक दो युवतियाँ भी इसी कमरे में हैं, वे भी अपने को अपने अपने पात्रानुकूल रूप दे रही हैं।)

श्याम—अरे ओ हरि, जरा यह टाई तो बांध देना।

हरि—अपने आप बांधो और मैं पूछता हूँ, तुम एक भारतीय होते हुए भी यह कपड़े का टुकड़ा क्यों जबर्दस्ती गले बांधने का प्रयत्न कर रहे हो।

श्याम—(झुंझलाते हुए) – देख-देख लेक्चर न झाड़। बड़ा आया है भारतीय बन कर। अरे टाई के बिना तो सारी पर्सनल्टी ही जाती रहती है।

हरि—.... और बेटा किसी 'दादा' ने टाई के नीचे वाले भाग को कस के खींच दिया तो सारी पर्सनल्टी धरी की धरी रह जायेगी।

श्याम—सुन-सुन यह सब शरीफों के साथ नहीं होता।

हरि—क्यों रे। तू कब से शरीफों की गिनती में आ गया ?

श्याम - अच्छा छोड़ पहले यह बता तू टाई बांधेगा या नहीं ?

हरि—टाई की 'नॉट' बांधना बता दे, टाई मैं तेरे बांध दूंगा।

श्याम—अरे 'नॉट' ही आती तो तेरा लेक्चर अब तक खड़ा खड़ा सुनता क्या ? (मजाकी लहजे में) अच्छा बेटे अब पता चला कि तुझे भी टाई बांधनी नहीं आती।

हरि—आती है।

श्याम—तो बांध ना।

हरि—नहीं भाई विदेशी चीज न तो बांधेंगे न घर में किसी को बांधने देंगे।

श्याम—तो बेटा उतार पैण्ट-कमीज, ये भी तो विदेशी हैं।

हरि - नकल करो जरूर लेकिन अक्ल भी काम में लिया करो। मुझे पैण्ट-कमीज पहननी आती है, इसलिए पहनता हूँ, तुझे टाई बांधनी आती नहीं, लेकिन जनाब बांधेंगे टाई ही।

श्याम - (गुस्से में)—बस-बस, खामोश।

हरि—क्यों ?

श्याम—'क्यों' क्या, मैं किसी और से बंधवाता हूँ। आखिर ड्रामे में एक ऊँचे ओहदे वाले अफसर का रोल अदा करना है।

(श्याम जाता है, हरि खड़ा २ मुस्कुराता है। हरि (अपने ही आप से)–श्याम को देखो क्लर्की करते २ मर जायेगा लेकिन आज ड्रामे में अफसर का रोल क्या मिला, समझता है कि बस मैं ही मैं हूं आज तो ! इसी बीच एक नौकर 'माइक' लाकर उस कमरे में रख जाता है जिससे वहां की (मेक-अप रूम की) आवाज स्टेज पर भी जाती है।)

हरि—नरेश, अरे भाई अभी तक तो तुमने पैण्ट तक नहीं पहनी।

नरेश—भाई साहब, डायरेक्टर साहब कहते हैं 'वह' पेंण्ट पहनो।

हरि—कौन सी ?

नरेश—अरे वही जिस की मोहरी १९ इंच है। अब तुम ही सोचो, मैं ऊँची पर्सनल्टी वाला भला उस 'घाघरा' टाइप पेण्ट को पहनूंगा ?

हरि—(प्यार से उस के गाल पर हाथ फेरते हुए)—नहीं-नहीं, हमारा राजा बेटा उसी पेंण्ट को पहन कर पर्सनल्टी थोड़े ही खोना चाहता है। (गुस्से में) देख, पार्ट करना है तो उसी को पहनना होगा।

नरेश—अरे, पापे मुझे समझा क्या है। ऐसे ड्रामे को लात मार कर किसी दूसरे में पार्ट करूंगा लेकिन ‥।

हरि—(मुंह बनाते हुए) — करूंगा ३ इंच की मोहरी वाली पैण्ट पहन कर।

नरेश—अगर मुझ से पार्ट करवाना है तो मेरे मन-पसन्द पैंण्ट लादो।

हरि—(गुस्से मे)—बेटा, सर्टिफिकेट लेने के लिए ता चड्डी पहन कर भी स्टेज पर आ जायेगा लेकिन पार्ट करेगा चुस्त नहीं, नहीं 'टाइट' पंण्ट में। (अपने आप से कहता है) बुरा हो इन अमेरिका वालों का। सारी हवा ही बिगाड़ दी। क्या निकाली है वो 'अमेरिकन कट'। (हंसता है)

(बाहर से हंसी की आवाज आती है, हरि अपने ही में मस्त है।)

नरेश—मुझ से कुछ कहा भाई साहब।

हरि—नहीं बेटे तुझ से कोई क्या कह सकता है। लेकिन एक बात कहता हूं-तुमने कभी 'चार्ली चैपलिन, का नाम सुना है।

नरेश—(उत्सुकता से)—हाँ-हाँ, क्यों ?

हरि—तुम्हें पता है, वह अपनी कॉमेडी के लिए कितना प्रसिद्ध है ?

नरेश—है तो।

हरि—इस का रहस्य जानता है।

नरेश—नहीं।

हरि—बेटा उसकी प्रसिद्धि का रहस्य है 'ढीली-ढीली पेंण्ट' तुम अन्दाज लगा सकते हो उसकी पेंण्ट की मोहरी क्या होगी ?

नरेश—यही ज्यादा से ज्यादा १९ इंच

हरि—तब बेटे उस की पिक्चर देखो और मुझे बताओ उसकी पेंण्ट की मोहरी कितनी है।

नरेश—अच्छा भाई तुम्हीं बताओ।

हरि—कम से कम उसकी मोहरी होगी २२-२३ इंच। बेटे, उसके पैर के जूते भी दिखाई नहीं देते। ऊपर से तुर्रा यह कि बार २ ऊपर खींचता है मतलब ढीली-ढाली और हद से ज्यादा लम्बी।

(फिर हॉल में बैठे लोगों का ठहाका सुनाई देता है।)

हरि—(नरेश से)-ये बाहर के लोग क्यों हंस रहे हैं ?

नरेश पता नहीं आपस में ही चुहल हो रही होगी।

(हरि इस बात से आश्वस्त हो उस तरफ कोई ध्यान नहीं देता।)

नरेश—अच्छा भाई साहब ठण्डे दिल से कहो क्या मुझे वही पैण्ट पहननी है ?

हरि—(निर्णयात्मक रूप से)-हाँ वही।

नरेश—ठीक है इस ड्रामें में पहन लेता हूँ। फिर कभी पहनूं तो नाम बदल देना।

(नरेश का पेंण्ट पहनने चला जाना। हरि अपनी जगह खड़ा-खडा सोचता है-आज यह ड्रामा भी होगा या नहीं। इतने में इक युवती उसकी ओर आती हैं।)

शीला—देखिए भाई साहब यह हमारी सरासर तौहीन है कि हमें सूती साड़ी दी जा रही है और न ही पाउडर है नही लिपस्टिक।

हरि—इस में तौहीन की क्या बात है ?

शीला—मैं आप से अन्तिम बार कह रही हूं कि मुझ से अगर नाटक में पार्ट करवाना है तो 'टेरिलीन' की साड़ी मंगा दीजिए।

हरि—(गुस्से में मुंह बना कर चिढ़ाते हुए)-टेरीलिन की साड़ी मंगा दीजिए । हूं-हूं, आप बेशक यहाँ से जा सकती हैं ।

शील—क्यों ?

हरि—क्यों कि आपकी पसन्द का यहाँ कोई मूल्य नहीं । घर में भले ही सात रुपये वाली पैबन्द लगी सूती साड़ी पहन कर दिन गुजारेंगी लेकिन यह ड्रामा है इसलिए जोर-जबर्दस्ती कर रही हैं !

(बाहर से लगातार ठहाकों की आवाज आती है । हरि बार-बार चौंकता है लेकिन ध्यान नही देता । सोचता है होगी कोई बात ।

शील—(हरि से)-तो आप का फैसला है कि वही पहन कर पार्ट करूँ ।

हरि—जी, हाँ ।

(शील भुनभुनाती हुई चली जाती है । हरि खड़ा-खड़ा सोचता है । अचानक उसका ध्यान पास रखे माइक पर जाता है और तत्काल ही बाहर के ठहाकों का कारण उसकी समझ में आ जाता है, उसे बड़ा पश्चाताप होता है कि अन्दर की सारी बातें बाहरी लोग सुन२ कर आनन्द ले रहे हैं ।)

हरि—(खीज कर)—नरेश ।

नरेश—(नेपथ्य से)—हाँ भाई साहब ।

हरि—(गुस्से में)—क्यों बे पैण्ट नही पहनी ?

नरेश—(हरि से)—डॉयरेक्टर साहब कह रहे हैं, आज नाटक नहीं होगा ।

हरि—(गुस्से में) नाटक के बच्चे यह माइक मेरे पास क्यों छोड़ गया था, अब क्या और नाटक दिखाना बाकी रहा, बेटा नाटक तो पर्दा उठने से पहले ही हो गया ।

नरेश—आश्चर्य से—सो कैसे ?

हरि—(निराश स्वर में)—फुर्सत में आना सब समझाऊँगा । (गुस्से में) और बेटे अपनी अमेरिकन कट पैण्ट पहन कर खूब 'रॉक एन राल' करो ।

(बाहर से फिर ठहाकों की आवाज आती है)

नरेश—तो भाई साहब मुझ पर क्यों नाराज हो रहे हो ?

हरि—(हतोत्साहित सा) —बाज आया मैं तो नाटक करवाने से । यह अच्छी रही पर्दा उठने से पहले ही नाटक हो गया ।

(बाहर से फिर ठहाकों की आवाज आती है, हरि का ध्यान फिर माइक पर चला जाता है जो अभी तक वहीं रक्खा है ।)

हरि—(झल्ला कर माइक पर हाथ रख करके)—नरेश के बच्चे अभी तक यह नहीं हटाया ।

नरेश—(दूर से)—आता हूँ भाई साहब ।

हरि—अब आयेगा तो बेटा तेरा ही नाटक बना दूंगा । (हरि गुस्से में माइक फेंक देता है और सिर पर हाथ रख कर बैठ जाता है । पर्दा उठता है तो हॉल बिल्कुल खाली होता है, पर्दा फिर गिर जाता है ।)

(शेष पृष्ठ ८ का)

उन्हें शर्मा जी एवं बनारसी जी के साहित्य का अवगाहन करना चहिए । 'चहचहाते चिड़ियाघर' का वह नायाब प्राणी और 'बनारसी इक्के' का वह बेढब सवार अब हमारे बीच नहीं रहा ! किन्तु उनकी साहित्यिक देन हमें सदैव आह्लादित करती रहेगी । सम्पादकाचार्य अम्बिका प्रसाद बाजपेयी हिन्दी-पत्रकारिता की ऐसी कड़ी थे, जो कि 'पुरातन' एवं 'नूतन' का संघिस्थल कहा जा सकता है । वे मृत्युपर्यन्त पत्रकार का कठोर जीवन अपनाए रहे । उन्होंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं पसारे । उनकी मृत्यु से हिन्दी-पत्रकारिता का एक युग ही समाप्त हो गया । माखनलाल चतुर्वेदी के निधन के साथ 'राष्ट्रीय कविता' का एक मूर्धन्य कवि, जिससे कभी नवीन, सुभद्रा और हरिकृष्ण

प्रेमी जैसे सुकवियों ने प्रेरणा ग्रहण की थी, और जो आजीवन राजनीति एवं साहित्य जगत् के एक प्रबल सूत्रधार रहे, वे भी हमारे रिक्त होते हुए कोष को और भी कंगाल कर गए। राष्ट्रीय स्वाधीनता का यह अग्रगी कवि हिन्दी की गरिमा का 'हिम किरीट' था और उसकी प्रबल वाणी हिन्दी-कविता के ओजस्वी कंठ की शृंगार थी!

१२. वेद-मूर्ति महर्षि सातवलेकर का सार्वजनिक अभिनन्दन

पं. सातवलेकर ने शताधिक वर्षों तक जीवित रहकर अनेक व्यक्तियों को सुखद आश्चर्य में डुबो दिया है! उनका सम्पूर्ण जीवन अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित रहा है, वे वैदिक ज्ञान के जीवित-जाग्रत कोष हैं। अभी-अभी राजधानी में अपने अभिनन्दन के प्रत्युतर में आपने कहा कि भारत की उन्नति के लिए वेदों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। आज देश के समक्ष जो भी समस्याएं हैं, चाहे वे धर्म की हों या भाषा या प्रतिरक्षा की—सभी का समाधान वेदमंत्रों के ज्ञान से ही हो सकेगा। ..... जब तक हम अपनी भाषाओं का आदर करना नहीं सीखेंगे और विदेशी भाषा को ही हृदय से चिपटाये रहेंगे, तब तक हमारी या हमारे राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं। इसलिए सभी भारतीयों को चाहिए कि वे अपने देश, अपनी भाषा और अपनी संस्कृति से प्रेम करें।

आपकी महत्वपूर्ण सारस्वत सेवाओं के उपलक्ष्य में ५१ हजार का चेक दिल्ली के नागरिकों की ओर से भेंट किया गया तथा इतनी ही राशि निकट भविष्य में और एकत्रित की जायेगी, जिससे कि 'स्वाध्याय-मण्डल' की महर्षि-कल्पित योजनाओं को गति प्रदान की जा सके। बौद्धिक जड़ता के कुहासे को चीरता हुआ ऋषि का स्वर, जितना शीघ्र हमारे मन प्राणों को आन्दोलित करे, उतना ही शुभ है। महर्षि के चिरायु होने की कामना के साथ हम उनके उपयोगी जीवन के प्रति मनीषी-परिवार की शतशः श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

लक्ष्मीकांत शर्मा

English Section

Editorial

The year 1967–68

The dissolution of the Congress as the only party in power all over the country, in March 1967, and the emergence of the alternative United Front Governments in about half the states, was hailed as a sign of our democracy coming of age, after 20 years of almost oligarchical sway of the Congress. A healthy rivalry between the Congress and the non-Congress states was expected to start an era of continuous progress, in all the walks of life. What has since come to view, however, has only belied our hopes and given us cause for undiluted dismay only. The alternative governments in almost all the states except Madras and Orissa have faltered even more hopelessly than the congress governments in their worst days. And the reasons are not far to seek.

In spite of very basic and fundamental differences, the constituent parties of the United Fronts, maintained just a semblance of unity for some time. But the stress and strain involved in settling their internal squabbles and dissensions, have not allowed them to remain united for long and to pay sufficient attention to the serious problems of the country. The phenomenon of 'floor-crossing' every now and then, by ligislators interested primarily in getting ministerships, and their gross misconduct inside the Parliament and Assembly Halls, exhibited through 'bellowing, bawling, screaming' and even throwing shoes at one another, have completely shaken the common man's faith in Parliamentary democracy. No wonder, therefore, if the growing discontent and frustration all over the country, aggravated by the successive years of drought, are also expressed through a worse type of hooliganism, outside the legislatures. The cries of 'Assam for the Assamese,' and 'a Separate Tamilnad' and 'No Hindi in the South' have been added to the already vociferous cries of 'An Independent Nagaland' and a 'Separate Mizo State.' And the agitation has been taking a more and more violent form every where, involving destruction of valuable public property and murder of innocent men, and the growth of such para military forces as the Lachit Sena in Assam, the Gopal Sena in Kerala and the Shiva Sena in Maharashtra.

The Remedy—

Desperate remedies have sometimes been suggested for the desperate malady. There are many intelligent persons who affirm that a parliamentary democracy is unsuited to a large and predominantly illiterate country like ours. The growing divisive tendencies of our multi-lingual society and the challenge posed by a hostile Pakistan on one side and an aggressive China on the other, they assert, can be met only by a Presidential system of government or better still by military rule. A little careful thinking, however, will at-once convince us that, having hitched our wagon to the star of parliamentary democracy, for such a long time, we cannot now go back and make experiments with the Presidential system or even the military rule. For one thing, we do not at present have a leader of the stature and charisma of a Nehru, or Patel who may be acceptable to the whole country through direct election. And for another it is difficult to imagine that a central executive, however clever and strong it may be, can reconcile the conflicting local claims of a country of such continental dimensions and diversities as India. The remedy, therefore, lies only in the improvement of the existing political system. And the responsibility for this lies partly with the people and partly with the government. The government should realize that the essence of the

Parliamentary system is to try and achieve decisions by consensus, and it should, therefore, carrry with it, atleast on vital national issues, as many of the opposition groups and parties as it can persuade. The convention that our Prime Minister, Mrs. Gandhi, seems to be establishing, of consulting the opposition leaders, on issues like the Language Problem, is a step in the right direction, and should make for smoother and more dignified administration and parliamentary life. The people, on the other hand, have to see that they cannot now afford to repeat the mistake of sending to the legislatures insignificant men or parties, who have no locus standi in the country.

Nearer Home --

While matters of fundamental importance, to which we cannot shut our eyes, are being dealt with on the national and international planes, our immediate duty, we feel, lies nearer home, in our own college. It is here that we have to ward off narrow sectarian attitudes, that stand in the way of national integration. It is here again, that we have to set an ideal of voluntary and self-directed discipline among students and teachers —a discipline that requires no outside props and crutches, and remains best directed under self-direction. And for encouraging national integration, we have to play a more positive role by trying to find occasions for the appreciation of the good points of the cultures of different castes, creeds and communities. While we are reasonably proud of our tradition of having no problems of discipline in our college, we have to see that this discipline is maintained, as far as possible, through a sense of responsibility rather than through extraneous devices of imposing fines etc.

A grievous loss—

In the demise of Shri Mehr Chand Mahajan, the Ex-Chief Justice of India, on 12th Dec. '67, our college has suffered a most grievous loss Shri Mahajan was one of the few survivors of that old band of devoted and selfless Arya Samajists who had dedicated their lives to the cause of D. A. V. institutions all over the country. He was one of the few Arya Samaj educationists who believed in the highest standards of education and raised the D. A. V. College Lahore to the status of one of the best colleges in India. His dream was to bring all the D. A. V. Colleges under some sort of a Dayanand University which should be devoted exclusively to the realization of the high ideals of Swami Dayanand Saraswati, in the field of education. And he thought that Ajmer, the place of his dicease, would be the most suitable venue for this University. (Vide page I for his life-sketch).

Post Graduate Classes in Two More Subjects-

Lack of post-graduate classes in Hindi and Sanskrit, in a college like ours, was being felt as an inexcusable shortcoming. This overdue addition to the number of existing post-degree classes, was effected in August '67. We congratulate the respective Heads of the Deptt., Prof. M. P. Sharma and Prof. D. C. Shastri, at their well-deserved exaltation, and hope that the Departments will live up to the trust and confidence placed in them.

And Two More Doctorates—

We cannot also fail to congratulate heartily two more of the members of our staff, Dr. M. M. Lavania and Dr. R. K. Saxena, at their well deserved Doctorates (Ph. D.) in Sociology and Indian History, awarded this session. They have not only brought honour to themselves, but have also helped to raise the academic stature of the College. The subjects of their theses were: (1) Leadership and planned development and (2) The Marathas in Rajputana from

1761 to 1818. A brief gist of the conclusions arrived at by them is included in the Magazine, in the form of articles (Vide Pages 38 to 41 and 60 to 64).

A sad end—

In life, however, as we know, 'all is not sweet, all is not sound.' Thus while there are bright careers reaching the acme of perfection, on the one hand, there are, on the other, promising ones cut short in the very heyday of their youth and glory. Shri Salig Ram Goel, from Agra, who joined us as a lecturer in Physics, in Sep. 1966, belonged to the latter category. He had made himself quite popular and amiable within months of his joining the college. He was known for his great interest in Vedanta and the teachings of Swami Vivekanand. He willingly accepted to work as Adviser to the Science Association of the college. But he had not been keeping sound health for some time, and expired suddenly on 23rd Oct., 1967, only a few months after his marriage. We have no words to express our grief and sympathy at the tragedy that overtook his young wife.

Koyna Earthquake :—

People are atleast mentally prepared for disasters like earthquakes, at places where such disasters are common. But at places where according to seismologists, earthquakes are not ordinarily possible, an earthquake of unusual intensity and length of time, comes like a bolt from the blue. It was an earthquake of this nature that shook the town of Koyna and the neighbouring places near Poona, on 11th December '67 and the following days. It is gratifying to note that in answer to an appeal from the Education Minister Shri Triguna Sen to donate for the large number of Koyna Earthquake victims, our college has not lagged behind in contributing its own mite. Incidentally our contribution of Rs. 1551/—to the Koyna Relief fund happens to be the largest perhaps, by any single institution in the country. And the First Year Commerce class of the college took a lion's share in making the contributions. Contributions from this single class amounted to about Rs. 300/—and our student, Shri Nattvar Gopal Goel of this class paid Rs. 51/—, while several others paid Rs 11/—to 21/—each. It is to be expected, however, that in future also we shall, when necessary, maintain our glorious tradition of coming out with liberal help to the victims of unforeseen disasters.

News From the Campus

M. K. Marwah

Democracy is not just a political institution; it is a way of life. Its foundation is toleration of others' point of view without necessarily giving up one's own. It's here that the mild Hindu has shown unparalleled strength through countless centuries. He has a definite philosophy of life, and yet has always tolerated, even respected, the non-conformist and the alien. The result has been astounding. The Hindu stream of life in its flow through centuries has absorbed and assimilated all the turbulent streamlets and avalanches whatever their sources, as the holy Ganga absorbs and assimilates all the seasonal and perennial streams in its capacious flow without losing its character. The non-violent Hindu has successfully vanquished the alien elements and sanskritised them.

This process of 'sanskritisation' has been marked by an absence of violence and fanaticism. This is the Hindu way of life. The bases of Hindu way of life and democracy are the same, viz, toleration of other's point of view and resolution of differences through discussion. Democracy has not suceeded in Asia and Africa because in most countries, the way of life of people does not agree with the spirit of democracy. But in India we know no other way of life except the Hindu way of life which in its essence is the democratic way of life.

This does not mean that Indian democracy is having no troubles. Troubles are there. But Indian democracy has successfully met challenges from without and within. Since 1962 two foreign aggressions have been met with cofidence and all the stresses and strains which came in the wake of foreign aggression have been contained.

In recent years the attitudes of fanaticism and extremism, which are negation of the Hindu way of life, have disfigured our public life. Language riots are a case in point. Fanaticism has been responsible for making the language problem difficult and knotty. Certain self-seeking demogogues are seen busy fishing in the troubled waters. Floor-crossing has taken place on massive scale. But the inherent strength of Indian democracy has been able to take these body blows in its stride and survive them.

We have conclusively demonstrated our adherence to the democratic way of life. Even in the field of economy we have turned the corner. After three successive years of drought, we have had satisfactory rainfall. Our dedicated scientists have been busy developing high-yielding strains of wheat, corn and bajra. We can look forward to reaping bumper rabbi crops as we did kharif crops.

While these great things have been happening in the country, we in this college, in our own humble way, have been busy in the service of community. We have added post-Graduate classes in Hindi, Sanskrit and Education. With the addition of these classes we hope to serve the community more effectively. We give below some facts and figures to indicate the lines on which we are making progress :—

ENROLMENT

Total Strength :—1333

The Class wise Break up is as under.

Faculty of Arts

M.A Pol. Science	34	M.A. Hindi	17
M.A. History	24	M.A. Sanskrit	3
M.A. Sociology	25	T.D.C. III Yr.	40
M.A. Geography	5з	T.D.C. II Yr.	58
M.A. Drawing	10	T.D.C. I Yr.	158
		Total	427

Faculty of Commerce

M. Com.	48
T.D.C. III Yr.	43
T.D.C. II Yr.	112
T.D.C. I Yr.	150
Total	353

Faculty of Science

T.D.C III Yr.	18
T.D.C II Yr	47
T.D.C. I Yr.	210
P.U.C.	25
Total	300

Faculty of Agriculture

P.P. Agriculture	106
T.D.C. I Yr.	80
T.D.C. II Yr.	39
T.D.C. III Yr.	28
Total	253

Grand Total 1333

MERIT LIST OF UNIVERSITY EXAMINATIONS 1967

Sl. No.	Name of the Student	Examination	Position Securing in University
1.	Mahendra Singh	Pre. Professional Agri.	I
2	Surendra Mohan Verma	,,	II
3.	Sukh Deo Prasad Sharma	,,	V
4.	Hemant Kumar	,,	VI
5.	Pokhar Singh Rathore	,,	VII
6.	S. C. Masthan	,,	VIII
7.	Pushkar Dutt	,,	IX
8.	Prabha Shankar Jha	Final Year T.D.C. Agri.	II
9.	Ganga Ram Chaudhary	,,	V
10.	Mohan Lal Gupta	,,	VI
11.	Bhonrey Lal Sharma	Final Year M. A. Geography	Gold Medal I
12.	Bhagwati Prasad Gautam	,, ,, Drawing	II
13.	Ram Awtar Jaiswal	,, ,, ,,	III
14.	Mohammed Shafi	,, ,, ,,	V
15.	Satya Narayan Mittal	M. Com. Final	Gold Medal I
16.	Virendra Singh Agrawal	,,	II
17.	Rajendra Kumar Bohara	,,	IV
18.	Deep Chand Mathur	,,	IX

Scholarships:—78 students were awarded scholarships as detailed below :—

	Kind of Scholarship	Total No. of Students to whom Scholarship was awarded.	Total amount af Scholarship
1.	Scheduled Castes Scholarship	24	10,941.00
2.	Lower Income Group	1	593.00
3.	National Loan Scholarship	7	5,070.00
4.	College Scholarship	2	120.00
5.	Merit Scholarship	12	6,540.00
6.	Merit-Cum-Need Scholarship	17	7,900.00
7.	National Scholarship	3	2.600.00
8.	I.C.A.R. Scholarship	4	3,600.00
9.	University Merit Scholarship	3	1,260.00
10.	Study Loan	3	1,800.00
11.	Political Sufferers	1	200.00
12.	Atomic Energy Scholarship	1	1,200.00
		78	41,824 00

UNIVERSITY EXAMINATION RESULTS 1967

Faculty & Class	Total No. of students on Roll	Appeared No.	No. Passed I Division	II Division	III Division	No. pass without Division	Total Passed	Passed Per-centage
Arts :								
M.A. Pol.Sc.	10	10	—	2	7	—	9	90%
M.A. Sociology	6	6	—	6	—	—	6	100%
M.A. Geography	16	16	1	12	3	—	16	100%
M.A. Drawing	5	5	3	2	—	—	5	100%
M.A. History	3	3	—	2	1	—	3	100%
TDC III Yr.	40	37	—	2	3	10	15	40.3%
TDC I Yr.	105	104	—	—	—	43	43	41.3%
P.U.C.	13	13	—	1	2	1	4	0.8%
Commerce :								
M. Com.	11	9	4	—	4	—	8	89%
T.D.C. III Yr.	48	45	—	5	11	5	21	41.7%
T.D.C. I Yr.	171	169	—	—	—	60	60	35.4%
P.U.C.	19	18	—	2	4	1	7	39.4%
Science :								
T.D.C. III Yr.	23	23	—	4	1	2	7	30.4%
T.D C. I Yr.	146	122	—	—	—	41	41	33.6%
P.U.C.	25	19	—	2	3	3	8	42.1%

Agriculture :

T.D C. III Yr.	22	22	3	18	1	–	22	100%
T.D C. II Yr.	29	29	–	–	–	26	26	89.6%
T.D C. I Yr,	44	44	–	–	–	31	31	70.4%
P.P. Agriculture	91	83	11	52	7	70	70	84.3%

Finances :

Income Rs. 9,49,367.00
Expenditure Rs. 10,65,050.00

Staff :

Strength :—
Number of Teachers—72
Ministerial Technical & Class IV–82

Following Teachers have joined this year :—

1. Dr. Har Bilas Maloo M Sc. (Maths), Pn. D. :— Mathematics
2. Shri Shyam Lal Mathur—M. Sc. (Zoology) :— G. Education
3. Shri Suresh Chandra Pal—M Sc. (Agri) Agri. Economics
4. Shri Mithlesh Kumar —M. A. (Econ.) B. Com.
5. Shri Amar Chand Agrawal;—M. Sc. (Phy.) Physics.

Following Teachers have left :—

Sad demise of Shri Salig Ram Goyal M. Sc. (Physics).

College Library

During the year under review 4,000 volumes have been added to the library, bringing the total to approximately 30,000 volumes. 24640 volumes were borrowed by the students. On an average 150 students visited the library daily. The library subscribes to 130 papers and magazines.

Reference Books section and facilities for research students are special features of the Library.

The Students' Union :

During the year 1967-68, the Students' Union has been quite active. A number of debates and symposia were held. The office bearers of the Union were elected in the last week of August, as under :

President : Om Prakash Agarwal
Vice-President : Ashok Kumar Malik
Secretary : Shri Krishan Sharma
Joint-Secretaries : Girdhar Daswani
Shyam Sunder Mathur

Inauguration of the Union :

The Union was inangurated by Shri S. C. Mathur, Education Minister, on 16 September 1967. He said that he was diffident to address the students as they were in the grip of a wave of indiscipline and resented unpalatable advice. However, he had persuaded himself to be present among the students of D. A. V. College as they had a tradition of discipline.

Discussing the language problem which was agitating the country, he commented that Hindi was bound to be accepted as the link language of India. Rajasthan had a special role to play in the development of Hindi.

He expressed his disatisfaction with the educational policies being persued in the country. Unfortunately, the present education

does not enable a student to earn his livelihood and play his part as a useful member of the community.

He praised the library building and hoped that more books will be added.

Earlier, Principal Vable welcomed the chief guest and acquainted him with the progress made by this college.

Social Week celebrations

The Social week celebrations took three days as usual from 21st of December to 23rd of December 1967, before we broke for winter. As soon as the Half-Yearly Examinations came to an end in the afternoon of 21-12-67, we got off to a start with General Knowledge Test, in which about 35 students participated.

The most important academic and literary part of our social week programme was the holding of a seminar on the Language Problem and the recently passed Official Language Bill in Parliament. Interesting debating competitions were organized under the chairmanship of Shri R. N. Chaudhari, a leading literary and political figure of Ajmer city in English as will as in Hindi The subject for the Hindi and English debates were as follows :—

Hindi :– इस सदन की सम्मति में मिली जुली सरकार की अपेक्षा बहुमत प्राप्त एक दलीय सरकार सफल लोकतन्त्र के लिये श्रेयस्कार है।

English:–In the opinion of the House twenty years of freedom in India have proved that democracy has failed to find a cangenial soil in this country.

During the socil week programme a cricket match between the selected team of the students Ws the staff members was played. It was a very interesting match played on 23-12-67 from 12 A.M. to 4 P.M.

On 22nd evening the English One-Act-Play "The Croach, the Cock and the Candle" by Hugh Waterman was staged. It was directed by Shri R. S. Varma, Head, Deptt of English and Shri A. K. Rajpal. Shri A. K. Rajpal deserves all thanks for the presentation of an English drama very succesfully.

Miss Paramjit Kaur, Miss Chanty Marks, Miss Mridula Bais, and Anil Nag and Bharat Kapoor were repeatedy applauded for their roles.

On the evening of 23-12-67 there was a variety programme. The most interesting piece of programme was the Hindi play "Bhabhi ka Vyah" (भाभी का व्याह) directed by Shri A. K Gupta. It was an extremely humorous piece of histrionic art. Everybody got a dramatic treat. Shri A. K. Gupta took a lot of pains in its preparation Savtish Kumar Mishra and Dinkar Singnh drew much opplause. All students who particip-ated in these plays and made them a success, deserve our thanks. Very interesting music and songs were presented by Shri S. K Sen and Shri Sudhir Bhargava.

Hindi and English Essay Competitions were also held on 23-12-67 in which more than forty students of different faculties and classes participated. Thus ended our Social Week Celebrations with a grand success.

Games and Sports

Our College took part in the following activities :—

(1) Badminton Tournament held from 12th Sept. to 15th Sept. at Government College Ajmer. Our team won in first round against Govt. College Nim Ka Thana

& lost aginst University Commerce College, Jaipur.

(2) Foot-Ball Tournament held from 17th Nov. to 22nd Nov. at Poddar College, Nawalgarh. Our college lost against Doongar College Bikaner. Our four students were sent for University Foot-Ball selection. Out of four one student Shri Chitranajn was selected to represent the University Foot-Ball team for North Zone foot ball championship in Jammu & Kashmir. He was awarded University colour for the second time in succession.

(3) Our college also took part in weight lifting competitions. Three students took part in different catagories. Shri Dayashankar was placed first, Praveen Kumar second & Suresh Chandra third. Shri Dayashankar was selected to represent University Weight Lifting Team for All India Inter-University Championship held at Muslim University Aligarh. He was also nominated the Captain of the team. He was awarded University colour.

(4) Our team also took part in Hockey Tournament but its performance was not satisfactory. The competition was held from 4th Dec. to 9th Dec. 1967 at Maharaja's College, Jaipur.

(5) Our college took part in Athletic Championship from lst to 3rd Dec held at M. S. J. College Bharatpur. Our student Shri Chand Ram Yadav was placed Ist in Hop-Step & Jump & II in Broad Jump.

Other Faculty tournaments of Volley Ball, Kabaddi, Hockey &Cricket were also conducted. The results are as follows.

Agriculture Faculty was winner of Hockey, Foot Ball & Cricket. Kabaddi and Volley Ball won by Arts Faculty. Table Tennis Tournaments also took place. The result of table tennis tournament are as follows :—

Singles:—Shri Narendra Chauhan...Winner
Shri Surendra Mehta...Runner.

Doubles :—Shri Surendra Mehta,
Shri Shanti Lal...Winner.

2. Shri Ashok Kumer, Shri Ram Krishen Joshi—Runner-up

Annual Sports Meet

Our College Annual Atheletic Meet was organised on 28th Feb. 1968 and was inaugurated by Shri K. G. Garg. In this Meet Shri Shiv Chand Ram Yaday I Yr. T. D. C. Arts was adjudged the Best Athelete of the college. He secured 25 points. The next best Athelete was Shri Dinkar Singh who secured 9 Pts.

Arts Faculty scored 109 Pts., Agri. 48 points Commerce 11 and Science Faculty failed to open account.

Ball Badminton

During the session, a new game of, "Ball Badminton" was organised by Dr. K. C. Kishore on the request of students of Andhra and Kerala states.

Photography Club

The club has been fairly active. Besides students some teachers also benefited from the classes run by the club. Shri K. C. Sharma deserves a pat on the shoulder for useful work he has put in.

N. C. C.

This year N. C. C. in this college enters 16th year. Since it was made compulsory N. C. C. has made rapid strides in its various branches—Army, Navy and Artillery. Besides compulsory military training. the cadets have been receiving training in civil defence. The most interesting feature of

the N. C. C. this year was its Annual training camp which was held at Kishan-Garh from 17-9-67 to 25-9-67. Nearly two hundred cadets attended the camp The Annual function of N. C. C Army wing was held on 17th Feb '68. Dr. P. N. Mathur, Principal, Govt College, Ajmer presided and gave away the prizes to the cadets. SU/O Gopilal Yadav has been declared the best cadet of the year 1967-68. N. C. C. in this college is proud of feeding the services by its creams.

Principal D. Vable has been patronising N. C. C. and it is under his patronage that N. C. C. has progressed so much in this college.

Major S. V. Ghule and Captain K. N. Gupta and Lt. S. S. Sharma deserve compliments for their hard and good work for the N. C. C.

5th Raj Arty Bty N. C. C.

This year has been fruitful from the point of view of training of the cadets. "Lecture on Civil Defence," "Tips to be successful Before the S. S B", "Utility and Importance of N C. C. Training", were thought-provoking The Battery had a very successful camp at Government Polytechnic, Ajmer. Another important news is that now the Battery has four Six-Pounder guns. U/0 Vishwa Delp Golase has been declared the Best All Round cadet of the year. The Battery will be sending one cadet to I. N. S. Training at Bangalore. Also four cadets will be attached to various regular units of Army.

The cadets and the officer of the Battery Lt. V. K. Sharma owe a sense of gratitude to Maj N. S. Yadav, Officer Commanding for his inspiring leadership. To the Principal they are indebted for his patronage.

N. C. C. Naval Wing

As usual the cadets were given intensive training in different subjects. C. P. O. G. Singh and other instructors made a good job of the instructional work entrusted to them. Cadet Captain Anil Nag and Petty Officer Cadet Rohitash Chadda represented Rajasthan at Republic Day Prade 1968 at Delhi. Anil Nag and Anil Khanna were advanced as Cadet Captains. Principal Vable is to be thanked for his sympathetic interest in N. C C. (Navy).

Geography Association

With the beginning of the session, the Associaion ardently resumed its usual activities Under the chairmanship of Dr. M L. Mittal, a council was formed with the following members :—

Prof. S. V. Kapade ...... Adviser
Shri Mahesh Kumar Bahl, M. A. (P)
Shri Manohar Daryani, M. A. (F)
Shri Uttam Kumar Goyal, T.D.C. (Final)
Shri Milap Chand Porwal T.D.C. (IIYr)
Shri Vimal Chand Kothari, T.D.C. (I Yr.)

This year, in the month of August the Association had a "Triveni Gathering" of scholars in Geography–Dr. A. R Tiwari; Professor of Geography (St. John s College, Agra), Dr. A N. Bhattacharya, Prof. of Geography (Udaipur University); and Shri Ganesh Narain Mathur, Principal (Government College, Pratapgarh). The talk was presented by Dr. A. N. Bhattacharya and Dr. A. R. Tiwari, addressed the students on "Urban Geography"–a branch which is developing in the group of applied geography.

A yet new venture has been programmed and will be implemented by the Association to help the boys in the matter of Geographical Journals published in India by different universities and colleges. The Association will subscribe to the journals published from Delhi, Banaras, Meerut, Aligarh, Gorakhpur, Hyderabad, Ranchi, Jodhpur, Calcutta, Udaipur, Madras.

Hindi Parishad

With the addition of Post–Graduate classes in Hindi, the Parishad has received a shot in the arm. The youthful Adviser, Shri Sada Vijay Arya has brought a lot of zest to bear on the activities of the Parishad. As a result the Parishad had a crowded programme during the year under review. Shri Ramjilal was elected President and Shri Radhay Shyam Modi Secretary. The Parishad was inaugurated by Shri Vipin Vihari Vajpayee, Principal, Govt. Teachers' Training College. Shri Vajpayee is a Hindi scholar of note and he hoped that the Parishad would be engaged in useful work.

On 13 September, on the occasion of Hindi Day, the students had the proud privilege of listening to Kaka Kalelkar and Shri V. A. Sharma, Secretary, Hindi Pracharni Sabha, Madras. Kaka Kalelkar impressed upon the students the need for service of Hindi. Shri Sharma mentioned the useful work being done by the Pracharni Sabha in South India.

On 15 September, Magan Bhai Desai, ex-Vice-Chancellor of Gujrat University, addressed the students. He noted how the governmental policies have failed to help the growth and development of Hindi.

The Parishad also arranged lectures of Dr. Bhawani Lal Shastri of Pali and Dr. Nityanand Sharma of Jodhpur. Both the learned speakers highlighted the contribution of Swami Dayanand and Arya Samaj to the growth and development of Hindi.

The Parishad arranged competitions in debate, essaywriting, story writing, verse-writing, and cap-verses.

On 26 January the Parishad arranged a Variety-Programme in aid of the departmental library.

Prof. M. P. Sharma needs to be complimented for rejuvenation of the Parishad.

Principal Vable is to be thanked for his encouragement to the Parishad.

Agriculture Association.

The Association elected its office-bearers on 30 August, was inaugurated on 16 September and held debate and essay-writing competitions in the last week of January.

M. Ed. Class

On 10 August our M. Ed. class was formally inaugurated by Shri Barkat Ullah, Minister, Rajasthan Government. The Minister highlighted the role of teacher training in the spread of education. He praised the Arya Samaj for providing facilities for M. Ed. class. He remarked that it is a great service to the community.

Jialal Institute Students' Union

Jialal Institute Students' Union was inaugurated by Shri Hari Bhau Upadhayaya on 27 October. Da Sahib, as he is affectionately addressed, expressed stisfaction with the useful work being done by Arya Samaj in the field of education.

Governor Hukam Singh

On 25 August Sardar Hukam Singh, Governor of Rajasthan, addressed the students. He remarked that as he hails from Punjab, he is familiar with the chain of D.A.V. Schools and Colleges in Punjab, and the wonderful work these institutions are doing in the field of education. These institutions are famous for their high standards.

He advised the students to become good citizens and serve the country. He expressed his belief that it is the duty of the government in a welfare state to give education to all. And it should come out with help for those private institutions which are sharing the burdon of the govt. in this field.

He said that his blessings will always be with the college and he hoped that some among the students would take the place of Jawaharlal Nehru and Indira Gandhi.

Earlier, Principal Vable welcomed the Governor and acquainted him with the progress made by this college.

Shri Shobha Ram

On" March Shri Shobha Ram, Agriculture Minister, Rajasthan, presided over the annual prize-giving and gave away prizes to those students who had distinguished themselves in different fields of college life.

Addressing the students he emphasised the role of agriculture in Indian economy and high-lighted the part that Agriculture graduates can play. He advised the Agriculture graduates to help villages improve methods of cultivation.

He declared that the government of Rajasthan proposes to give 30 acres of land on nominal price to those Agriculture graduates who wish to taking up farming as their profession.

He hoped that the Planning Forum of this college would take interest in the development of nearby villages. Earlier, Principal Vable welcomed the chief guest and indicated the lines on which this college is making progress. ●●

मंत्री, राज.

प्रथम वर्ष वाणिज्य के छात्र नटवर गोपाल से कोयना भूकम्प पीड़ितों के लिये ५१)
का चैक प्राप्त करते हुए

श्री शिव चरण माथुर

छात्रावास के वार्षिकोत्सव पर भाषण देते हुए

Bn S/UO राजेन्द्रसिंह

S/UO राधेश्याम पारीक VII Coy

U/O विश्व दीप गोलश, बी. एस-सी. (कृषि प्रथम वर्ष)

५ बैट्री का सर्व श्रेष्ठ गोलन्दाज कैडेट

S/UO सूरजसिंह V Coy

Dr. Mehr Chand Mahajan

(A Life - Sketch)

by Prof. R. S. Varma

In the demise of Dr. Mehr Chand Mahajan, the third Chief Justice of India, on 12th December '67, at Chandigarh, India lost not only a most outstanding judicial talent in the country, but also a great reformer and humanitarian to whom law itself was "a human and social institution, a means to achieve social ends and not an end by itself." Enjoying a uniformly excellent health, a stupendous capacity for work and a marvellous memory, he lived a very full and valuable life, in the very midst of the main political, social, educational and legal cross-currents of the country. His life was, in fact, a wonderful saga of incident and achievement, which reveals not only the many-sided talents of the man, but also a picture of the colourful time in which he was called upon to play a leading role. You can thus read the story of his life as a novel almost.

He was particularly interested in the D. A. V. College movement of Punjab and other states. And it was as a D. A. V. enthusiast that he paid his first visit to our own college on 22nd January 1956 and delivered our Third Convocation Address. We still cherish his forceful advice to the student community to eschew provincialism, communalism and linguistic fanaticism, and stand for the unity of the country, above every thing else. And since then, he had obliged us by several subsequent visits, the last one being as late as 9th Jan. '67 to inaugurate the conference of the International Council of Arya Samaj Educational Institutions, and open our new college library building. We remember him also as a strong supporter of the idea that the D. A. V. institutions of India should have some sort of uniformity of standard and ideal, and should be brought together under some University which should commemorate the name of Swami Dayanand. Our College had the special privilege of enjoying his unbounded love and confidence, and he was all praise for Principal Vable. He desired very much to make Ajmer, the Nirvan-Bhumi of Swami Dayanand, as the seat of the Dayanand University of his dream.

A Child rejected at Birth—It was in the year 1889 that Shri Mahajan was born in a prosperous family of Mahajan Sahukars, in the tiny village of Tika Nagrota in the Kangra hill-district of Punjab. His father, Shri Brij Lal, a firm believer in Astrology, was told that the birth of this child, on 23rd December 1889, was highly inauspicious, and that he would die as soon as he saw the face of his son. The child Mehr Chand was therefore sent to live with a hill Rajput peasant family of some nearby village. Only after the child had passed seven years in this peasant family, did the Pandits think of revising their verdict about him. And now they declared that the boy was very lucky and would become a great man, either a judge or a minister. His father, however, was not still quite convinced. He would bring the boy home, but would not still see his face. But the boy himself had, by this time, become so fond of life in the peasant family, that no amount of attractions at home, joy-rides, sweets, nice clothes etc., could prevent him from running away to the peasant home, again and again. Ultimately however he was weaned away from his foster family and made to live with his mother and grandmother. Soon after he was sent to the school at Nurpur, for his education.

Accepted after twelve years—

Only when the child was 12 years old did Babu Brij Lal, on repeated assurances from the Pandits, take courage in both hands and decide to see the face of the boy. A Yajna on a grand scale was performed by a hundred and one pandits, and 500 Brahmins were fed after the ceremony of placing the child in the lap of his father. And he was now put in the Arya School at Dharamsala. But like many other boys, he was fond of gymnastics and sports and disliked studies, at this stage. Finding that he was accustomed to running away from school now and then, his father gave him a thrashing one day and sent him as a resident student to a school at Palampur, 22 miles away. And after passing his middle school examination of the Punjab University from here, in 1904, he was sent to Central Model School at Lahore. Soon after, a great earthquake shook the whole Kangra Valley, and his father, practising law at Palampur now, narrowly escaped after remaining buried in the debris of his house there, for several hours. After doing his Matriculation, in 1906, Mehr Chand joined the Government College Lahore. Fond of games and sports always, he ran cross-country and obstacle races here, and distinguished himself as a hockey and cricket player. And during his four years at the Govt. College he stayed in the family of the well-known lawyer, Bakhshi Tek Chand, who became Justice Tek Chand later on.

His first marriage was performed, in 1910, at his home at Bhadwar, after he had passed his B. A. Some 1500 guests, including almost all the district officials and members of the Bar, joined the marriage feast.

His grandmother had invoked the blessings of all the family gods and goddesses, but she forgot to invoke the blessings of the Snake goddess-Nagini Devi, and by a strange coincidence, a small snake put out its head from a corner of the house, during the kangna ceremony, which follows marriage. Remembering the omission, his grandmother made her obeisance and it disappeared after getting some milk.

Studying Law—

After passing his B. A, Mehr Chand joined M. Sc. in Chemistry at the Govt. College. But his father, a lawyer, wished his brilliant son to succeed him in his profession of law, and so, very unwillingly, he had to give up his M Sc. and join the law College During his student career, at college, Mehr Chand came under the spell of almost all the most renowned figures of the time—Lala lajpat Rai, Gopal Krishna Gokhale, Srinivas Sastri, Surendra Nath Bannerji, Mrs. Besant, Bipen Chandra Pal and Lokmanya Tilak. The speeches of Mahatma Hans Raj, Principal Dewan Chand, Dr. Narang and Lala Sain Das, during weekly Arya Samaj meetings, gradually weaned him away from the orthodox Puranic way of life, in which he had grown up and turned him into a staunch Arya Samajist. His college fellow, Har Dayal, a brilliant scholar, who became famous as a revolutionary later on, also left a powerful impression upon his young mind.

At the District Courts—

Shri Mehr Chand started practising law, with his father, at Dharamshala. During his long career as a lawyer he had some very interesting or rather funny experiences. Thus, for instance, when he was ready with his case in the court room at Dharamshala, it was found that the magistrate was still busy fishing somewhere. At 12 noon, instead of the magistrate returning, two men brought a big 7o pounder fish, with a chit that it was for the vakil sahib. The magistrate himself returned at 3 P. M. and heard the case at 3 30. In a criminal

case before an almost illiterate Honorary Magistrate, in Gurdaspur district, Shri Mahajan was opposed by another lawyer, Sheikh Chiragh Din. To impress the magistrate Chiragh Din cited a hundred English cases, all irrelevent to the case in hand. Shri Mahajan in his turn cited imaginary Privy Council decisions, over ruling decisions cited by Chiragh Din. The poor magistrate, not understanding a word of all this pleading, got utterly confused and postponed the case. Shri Mahajan was secretary of the Gurdaspur Tennis Club, and won all the Tennis Tournaments there, for five years in continuation.

At the High Court

In 1918 he started practising at the Lahore High court, and had the privilege of being in the company of such eminent men as Mr. Zafarullah Khan and Malik Feroze Khan Noon. During all this period, he never lost an opportunity of going on long hiking trips to glaciers and other places of interest in Himachal Pradesh and Kashmir. He got remarried after the death of his first wife, in 1922.

On the Bench

After an interesting trip to Europe, in 1932, Shri Mahajan was having a very lucrative practice at the Lahore High Court, but on the persuation of the Chief justice, Sir Trevor Harries, he had to accept the judgeship of the Court, in 1943, in spite of a huge financial loss. In May 1947 he was persuaded to accept membership of the Boundary Commission under Lord Radcliffe. Shri Mahajan was thus a close observer of the unprecedented holocaust that followed the division of the country into India and Pakistan, on 15th Aug. 1947, according to the Radcliffe Award. It is said that about four million people went from one side to the other and that about a million were killed on each side. According to the Governor Generals' notification, dated 14th Aug. 1947, Shri Mahajan was appointed judge of the East Punjab High Court, to be located at Amritsar, for the time being.

Prime Minister of Kashmir

The Maharaja of Kashmir did not any longer wish to retain Mr. Kak as the Prime Minister of the state, as he was found hobnobbing with Mr. Jinnah for the accession of Kashmir to Pakistan. On persistent requests of the Maharaja, therefore, and on the recommendation of Sardar Patel, the Dy. Prime Minister of India, Shri Mahajan was granted eight months' leave to take up his duties as Prime Minister of Kashmir on 12th Oct. 1947. Soon after this, strong pressure was brought on him to persuade the Maharaja to accede to Pakistan. But the Maharaja's dream of an independent Kashmir had been completely shattered by the extremely aggressive attitude of Pakistan, and he had now firmly decided to accede to India. Soon after, therefore, with the help and encouragement of the Pakistan Govt. started the raids of the Pakistani tribesmen on the 200 mile border between Kashmir and Pakistan. The Chief of Staff of the Kashmir army was a Muslim, and so were over 35 percent of the army personnel, while the police was more than 50 per cent Muslim. Naturally, therefore they were trying to help Pakistan. The Hindu, Sikh and Dogra forces scattered over an area of 84,000 Sq. miles were too few to control the situation. By the 25th of Oct. the raiders were knocking in the very neighbourhood of Srinagar. Very hurriedly, therefore, Shri Mahajan was sent to Delhi with papers affecting accesion of Kashmir to India. And by the 27th Oct. Indian forces flown over to Kashmir, were already occupying strategic positions there and driving out the raiders. Regular attack by the Pakistani army was thus prevented, because Kashmir was part of the Dominion of India

now and the forces of the Dominions of India and Pakistan, being under a common command. could not fight against each other. It was Shri Mahajan's foresight and diplomacy that brought about this favourable situation in time to prevent the disaster. The army was, however, needlessly prevented from recovering the western half of Kashmir, still under the sway of the raiders, as India had already filed a complaint against Pakistan in the Security council, and a sub-judice case cannot be fought upon the battlefield. This lack of foresight has cost us an almost permanent seizure of this part of Kashmir by Pakistan.

Sheikh Abdulla, the leader of the Muslim Conference in Kashmir, had designs for ousting the Maharaja some day and becoming an absolute ruler of the valley, ultimately. Shri Mahajan had understood the man from the very beginning, but Pandit Nehru had a completely implicit faith in him, and he compelled the Maharaja to have him as Head of the Emergency Administration in Kashmir, a post created only to placate the Sheikh and weaken the hold of the Maharaja. The Sheikh did not allow Shri Mahajan to have a free hand and tried to defame him every now and then, with the result that this experiment in dyarchy proved an utter failure. Shri Mahajan had to resign his Prime Ministership and leave the Maharaja completely at the mercy of the Sheikh. India had to agree to a plebiscite in Kashmir, provided Pakistan evacuated occupied Kashmir within a certain time limit. After Shri Mahajan's retirement from Prime Ministership, Sheikh Abdulla started a police inquiry aganist him and the Maharaja. Pandit Nehru, however, scorched this sinister move, as soon as he came to know of it.

Chief Justice of India

After working as a constitutional Adviser to the Maharaja of Bikaner for some time, Shri Mahajan was again back in the East Punjab High Court. And soon after, on 18th Sep, 1948 he was appointed judge of the Federal Court of India, in preference to Dewan Ram Lal, the Chief justice of the High court. With the coming of the new constitution into force on 26th Jan. 1950, he, along with the other five judges of the Federal Court, was appointed judge of the Supreme Court. The early death of Chief Justice Kania of the Supreme Court, at the age of 55, however, provided Mr. Justice Patanjali and Mr. Justice Mehr Chand opportunity to be the second and third Chief Justice of India, for short periods of a few months each Had Chief Justice Kania lived on to the normal retiring age of 60, the latter two could not have got the chance to be the Chief Justice of India.

He had a very good time as the Chief Justice of India. His colleagues gave him complete cooperation and affection. They freely criticised each other but reached unanimous decisions in most cases, ultimately. He had however, to retire on 23rd. December 1954, within a year of his appointment as Chief Justice. In a grand send off given to him by the Supreme Court, the Chief Justice designate Mr. Justice Mukerjee praised Shri Mahajan for the quickness of his approach in legal matters and for his power of mastering details in a short time. In his reply Shri Mahajan threw out a very useful hint for the improvement of the judiciary in India. He suggested that in the interests of impartial justice, the High Courts should, as far as possible, not be manned purely by the local people. The judges should, as far as possible, be recruited from outside states.

In Retirement—

After his retirement Shri Mahajan was, as usual, offered remunerative jobs, like those of a Vice-Chancellor, but he refused to accept them and devoted himself entirely to the improvement of Arya Samaj educational institutions. The D. A. V. College, Lahore had been rehabilitated at Ambala, after the Partition, and other D. A. V institutions of Lahore were shifted over to Amritsar and Jullundur. Shri Mahajan was elected President of the Managing Committee of these institutions. Under his fostering care and encouragement, the D. A. V. College Jullundur and other D. A. V. Colleges in Punjab developed into some of the biggest and finest institutions in northern India. In his Convocation Address, at Jullundur college in 1955, Shri Mahajan emphasized the need for bringing up men of sterling character and developing strong public opinion to counter-act the growth of corruption.

The separatist tendencies in the South, made him extremely apprehensive of the division of India into small states, after the death of Pt. Nehru So he wrote to him. in 1956, expressing his deep concern at the divisive tendencies in India and suggesting the adoption of a unitary form of government for the country, in place of the existing Federal Form. He felt that the necessary change in the constitution was not difficult during the life-time of Pt. Nehru and that the administration of the whole country under one elected Parliament, with the help of local Governors and advisers was the quickest and surest way of strengthening Indian unity and economising the expenses of administration. The country could of course be divided into a few big zones according to economic and administrative needs of each region.

Only now, against the background of the prevailing tendencies of disorder and disintegration, do we realize how prophetic was the vision of this man and how sound and timely was his advice ! He received enthusiastic support in his views from some of the leading statesmen, like Rajaji and Sardar Patel, but there was no response from Prime Minister Nehru, and that put an end to the whole matter.

A Piece of Unforgettable Service—

A piece of most unforgettable service to the nation, rendered by Shri Mahajan, however, was a bold. objective statement of the Kashmir Problem, on the eve of its discussion in the Security Council, in the year 1957. The Union Government distributed sbout 1000 copies of the brochure produced by him, as a background material, to the members of the Security Council and the Press.

The main contention of Pakistan has been that having pledged to get the issue of the accesion of Kashmir, decided by plebiscite, India was going back upon her international commitment, by refusing to do so now. To this Shri Mahajan's reply was. (1) The Indian Independence Act gives absolute power to the rulers of Indian states to accede to either of the two Dominions, and Mr. Jinnah himself recognized this power of the Maharaja of Kashmir. (2) The Indian Govt. has, therefore, no right to attach any condition, like that of plebiscite to the unconditional accession to India by the Maharaja of Kashmir. (3) If somehow our Prime Minister agreed to a plebiscite, that plebiscite, according to the dictionary meaning, stands accomplished, as the accession was ratified by Sheikh Abdulla's government, elected on adult franchise, and was further ratified by the duly constituted Constituent Assembly of Kashmir. (4) If, however, by plebiscite our Prime Minister

meant a direct vote on the issue, by the populace of Kashmir, such a promise was conditional, on Pakistan vacating its aggression on occupied Kashmir, within a certain fixed period of time. As Pakistan has not yet fulfilled its condition of vacating the aggression, the promise by India has become null and void. (5) If India were to hold the kind of plebiscite demanded by Pakistan, purely on moral grounds, it would plainly go against her secular ideals and would surely give rise to serious communal disturbances in the state, endangering particularly the lives of the minorities in the state (6) And on moral grounds again, a country which has not been able to give protection to its own minorities has no right to claim the guardianship of minorities in another country. There are almost ten times as many Muslims in the rest of India, as in the state of Jammu and Kashmir. When India can safeguard the rights of Muslims elsewhere in India, she can as well safeguard the rights of Kashmir Muslims.

As for the Security Council of the U. N. O.. Shri Mahajan's contention was that it was India that had just approached it with a request that Pakistan be declared an aggressor and asked to vacate its aggression and restore the occupied territory back to the state. The Security Council, therefore, according to him, had no right to take up other issues, outside its competence, and completely side-track the case first referred to it.

So closely and intimately connected, as Shri Mahajan was, with the state of Jammu and Kashmir, during some of its most turbulent days, there was none more competent or qualified to speak out the truth of the matter about it. It is to his eternal credit, therefore, that he responded to the hopes of the country, by coming out with the root of the whole matter, in such clear, forceful and unmistakable terms.

Active till the end of his Life—

To his everlasting credit also it must be recorded that Shri Mahajan remained active to the very last moments of his ripe old age of 78. Besides looking after the Arya Samaj educational institutions, so close to his heart, he was busy always working as a member of the Punjab University Syndicate, as Chairman of the Punjab Police Commission, as Director of the Reserve Bank of India, as a trustee and chairman of various charitable trusts, as President of the Dayanand Memorial Trust that was to develop Tankara, the birth-place of Swamijee as a seat of Vedic learning And in between he got time to look after his gardens and orchards also in the Kangra valley. Immediately before his death he completed the Report of the Mahajan Commission (he himself being the only single member of this body) on the boundary dispute between Maharashtra and Mysore. He was busy attending a meeting of the Punjab University Sydicate which he would not leave even on the advice of his friends, when he got the last attack of his fatal sickness. He was survived by a large and illustrious family. his eldest son being a Judge of the Punjab and Haryana High Court and another being a Member of the Parliament.

"Sighing that Nature formed but one such man, And broke the die."
—*Lord Byron*

"The history of the world is but the biography of great men."
—*Thomas Carlyle*

Was Hardy a Pessimsit Or a Realist ?

By Mrigesh Chandra III Yr. Arts

It is believed that Hardy was a pessimist. But when we closely study the back ground of his work it seems to us that the word pessimism is not fit for him. Exactly speaking, as I feel, he was against cheap optimism but he was not a pessimist in the true sense of the word. His readers misunderstood his realism and without any apparent reason called it pessimism. Hardy has nothing but contempt for those who sang in rapture about the All-merciful God without the knowledge of the facts of human experience.

Hardy had a realistic approach to the problems of the world. He did not see the world through the glasses of romance and fancy. Undoubtedly it is a fact that for one who is as observant as Hardy was, the vast forces work against man's happiness in life; life is for the most part painful with occasional interludes of happiness. One cannot deny that Hardy's outlook on life is sombre and sad but it is due to his faithful and realistic representation of life. Is it pessimism ?

Hardy could not agree with Wordsworth in his conception of nature. It was not a "fostering mother" or a healing power. Hardy portrayed Nature as he saw it, not because he was a pessimist but because he was a realist

Hardy had a sharp difference with Robert Browning, when Browning says 'God's in his heaven, All is right with the world." Hardy says. 'God's not in his heaven; all's wrong with the world." He said this not because he was a pessimist but because he was a realist. That is why when he saw that foolish men are rich, the good people suffer and man desires some thing while some thing different happens, he had to exclaim like this.

Hardy had a melancholy outlook. To him the world often seems "an ill expressed idea," to him man is "abandoned by God and treated with scorn by nature," man for him "lies helplessly at the mercy of the purblind doomsday accidents, chance and time. And from these man must never expect any thing good or kind." Is it all so because he was a pessimist ? The real understanding of the sorroundings of Hardy compelled him to have such an outlook ?

Hardy saw men and women as the puppets of a mocking fate Is it because of his pessimism or, because he saw that men and women suffer for no fault of their own ? When they are going to put their good intentions into action some such thing happens which upsets human calculations and turns good into evil.

Hardy presented nature as hard and unkind to human suffering. Is it due to his pessimism ? Or because, as an objective observer of nature, he has given a faithful description of natural phenomena, that he saw around him ? He was not blind to the grim pictures that nature produced around him. Hardy said that it was useless to expect any thing good from nature. To agrue it he says that nature itself struggles for its existence. In that struggle for existence it does not hesitate to crush man if he disturbs its evil designs. It is all red in tooth and claw. But still Hardy loved nature. Egdon Heath in the Return of the Native is a proof of it. Hardy was a great observer of nature. He saw it in all its

reality. Hardy's accurate observation power is proved when he describes the complexion of Egdon Heath, in the Return of the Native.

Hardy shows little belief in the Omnipotent God. He attacks the idea of a Christian God who is traditionally regarded as kind and benevolent. His God is sitting comfortably in heaven mocking and jeering at the suffering of humanity. He observes that God takes pleasure in torturing mankind. Men to Hardy's God are as "flies to wanton boys. He kills us for his sport." Such an indiscriminating God is of no use to man. He therefore in one of his poems makes the funeral of God and buries Him.

The philosophy of Hardy makes us call him a realist rather than a pessimist. He does not hesitate to call a spade a spade. Hardy's outlook is sombre, but it is not because he was a pessimist but because as a realist he presents a real and faithful representation of life ? We are unable to decide.

The suffering and pain of human beings moved Hardy's imagination He lived in a village and was surrounded by the dull and dark life of the poor villagers. He always noticed that the villagers led a very hard life. He saw that lovers could never be united. Every Jack could not get her Jill. That is why to Thomas Hardy "happiness is but an occasional episode in the general drama of pain" His character seems to cry "I fall up on the thorns of life, I bleed."

Thus the personal circumstances, the observation of life and his emotional view, made Thomas Hardy a tragedian. The world and life he has painted in his novels reminds us of the following line of Keats—"Here where men sit and hear each other groan."

"Where palsy shakes a few, sad, last grey hairs."

"Where youth grows pale, and spectre thin and dies."

"Where but to think is to be full of sorrow."

His world, as depicted in his novels, reminds us of the following lines of Arnold—"For this world which seems to be before us like a land of dream, so various, so beautiful, so new, hath really neither joy nor love, happiness nor certitude." Thomas Hardy in one of his poems seems to groan "O life with thy sad and sacred face do I weary of seeing thee."

Thomas Hardy felt "The world is a stage and men and women merely players" His characters seem to cry "It is a tale told by an idiot full of sound and furry signifying nothing" But we are unable to decide whether it all was due to his pessimism or realism. Because as a great artist he was interested in life. It is a different matter that only the dark and gloomy side of life moved his poetical insight and the glamour of rich town failed to attract his artistic inclination,

He like a show man shows the picture of life. It will be too much to assert that Hardy's pessimism means that he despises life.

Theme of his novel seems to be the theme that "Wordsworth's" "maiden Song"

"Some natural sorrow, loss or pain"

"That has been and may be again"

But one question always occurs "Whether Hardy was a "pessimist" or a" "realist"

Hardy seems to be pessimist and a realist at the same time.

An Apology For English

Upendra Sharma, M.A.

[All progress, in the history of mankind, has been made by following the dictates of reason and deterioration has been caused mainly by being led away by momentary passions and prejudices. Anti-English or Anti-Hindi fever is also one fit of madness, foreboding disintegration of the country, unless it is cured or checked in time.
---Chief Editor]

The present vicious atmosphere in the institutions and outside, compels us to feel painfully how democracy, a hissing-serpent, has crept into the field of Education and how the partial views of democratic rights and freedom have told upon our academic health. The intellectual aristocracy seems to groan helplessly in the jaws of democracy. That unfortunate day is not far when the glory of art, the genius of an artist, the skill of a scientist and the fame of a noble soul will be a sheer 'matter of election'--an issue to be judged by 'the raising of hands.' It is, indeed, alarming that the students will be on strike unless their 'demands' are entirely fulfilled. In many cases the persons in authority do revise their policy and jump to new decisions lest the 'politically conscious' students and their instigators should imperil their position. The long rope given to the students in the name of democratic rights just allows them to be unduly smart at the expense of academic values and discipline.

In the absence of an attack from outside (though the fear lingers) we choose to display our worth and valour through internal conflicts. In a continent like India where the number of regional languages seems to exceed the total number of states, the issue of language is liable to become intricate but it has been turned into a terrible conflict by those who rigidly hold petty politics above every thing. Without getting excited let us remind ourselves of the resolutions adopted by the National Integration Council in its meeting held on June 2 and 3, 1962.

"The council lays stress on the importance of teaching English as a compulsory subject, ... At all times, as a language of great international importance, English would furnish a link with the outside world, constitute an indispensable tool for future study and assist in the development of the regional languages."

In this context, Sri C. B. Gupta the then Chief Minister Uttar Pradesh, in the thirteenth All India Teachers' Conference, held at Lucknow in 1962, said, "...........the knowledge of English as an international language, which is fairly well-known throughout India, should be wide spread. The study of English, in this context, is important." Referring to Hindi as our mother tongue and other regional languages, he added, " .... It is thus obvious that English will be the third language which has to be learnt ....In view of the necessity of maintenance of a common link language, along with Hindi, adequate stress has to be laid, at the graduate stage, at the teaching of English as a compulsory subject." Thus the resolutions and views expressed by the men in authority just six years ago are being rejected and deplored by those who now find no other way of asserting themselves than to thrill and shock the country men by new experiments and decisions. What the resolutions and policies of the mighty Government. should then, mean ? Who can trust and depend upon them ?

Since it has been widely accepted that the replacement of English as the medium of education at the university stage is an inevitable end and since many universities have alr-

eady replaced English as medium by Hindi or by the regional language without confronting unavoidable difficulties, the question of medium should no longer strain our nerves. In fact, the controversy—the gulf of opposition—is 'either Hindi or English ?' On petty political grounds we just feel flattered to argue that as our eminent leaders did ask the British Government—the Englishmen—to quit India in the name of liberty, to day we must ask English, the international language that has invaluable treasure of profound literature, to get out of this country. Unfortunately we are not enthusiastic about our mother- tongue, we are badly intoxicated by the illwill for English, we dangerously mistake adulation for loyalty and mean-reaction for true patriotisim. Our intellectual and academic views have so badly shrunk into lowness that we confine language, literature, art, knowledge, artists and scholars to our particular country and race. If true loyalty to a thing is a virtue, ill-will, anti-feeling is a crime. To day those who vote for Hindi and go by the raising of hand are afraid that chastity of our mother tongue and purity of the motherland will be poluted by the Satan of English. English is the 'forbi dden tree.' Its 'mortal taste' will bring death into the Hindi—world. Therefore, beware of the peril ! 'Hindi and English', No; a bitter 'No'. In this country we do not tolerate adulteration in any thing. Why, then, adulteration in language ? Love for knowledge and freedom, patriotism, brotherhood and the sense of dignity is all centred on one bare fact—Removal of English.

Can we easily turn a deaf ear to such cries ? No; for they alter and decide the policies. Otherwise how the students could ever venture to poke their nose into grave matters for beyond their reach ? And what is their weapon ? Strike, processions and violence ! These are the flowers and wreaths by which they adore 'Sarasvati'. The entire atmosphere is stuffed with party-politics. The politicians lead the educationists by their nose. How do we, then, expect academic health to prosper and intellect to develop ? In fact, one who seeks 'Clash' and 'opposition' between Hindi and English or any other language and its literature, instead of a display to scholarship, authority and sincerity to this or that is only guilty of some 'ism', of some sordid reaction. He is a menace to learning and education. John Milton and many other immortal scholars keenly devoted themselves to the laborious study of Greek and Latin and felt much indebted to the Greek scholars and yet their orignality and beauty remains unimpaired. Degrading it may sound to those who insist on "East is East and West is West" even in learning and art, nevertheless, let us acknowledge that nearly all scholars of Hindi have sought inspiration and derived things from English language and literature. Instead of hiding it, let us remind ourselves that exchange of ideas and literary trends has always been greeted as a healthy practice by the advanced nations. Not only English and Hindi but other Languages too can advantageously co-exist, is a fact that needs no reflection.

The commendable development and progress attained by the Hindi language and literature in the past few years must provide solace to those who scornfully look at English as an impediment in the way of Hindi or any other language. On the one hand we assert the superiority and glory of our culture, of our language and religion and claim our first right in every thing good that already exists or has been brought about by the foreigners, and on the other hand we are afraid that English will pollute and ruin this or that. Has English been esteemed and greeted as the international language inspite of its being so

dangerous ? If its charms and powers are so dangerous to us how and why did it so successfully attract, help and inspire the Indian writers and the scholars of Hindi ? We are simply ungrateful and dishonest if we forget how ardently the writings of Shelley, Swinburne, Burke, Milton, Ruskin and of a great many scholars of English did inspire our thinkers and leaders in their struggle for freedom. We detest English because it is not ours ? Let us ask ourselves whether it is the pattern of our society, or of education or anything else we call 'Modern' that is entirely ours ? We discard English but do enjoy Western music and dance and do follow and encourage English manners and dress. We grumble that English has deprived us of what ever was Indian. This indicates our feeble and poor hold on what ever we have been deprived of. If English is the door or window through which the 'Serpent' has crept in, let us, if we can, kill the 'Serpent' instead of closing or removing the door or the window through which many intelligent things have entered and will enter if we are capable of receiving them and if our choice is not depraved.

We are gravely mistaken when we argue that the sole or predominent merit of English is its utility. For even if its usefulness dwindles, let us remember that in good education, culture and moral values are more important and enduring than the utilitarian. We learn and must learn English not only because it is a useful language but because it is the medium of certain indispensable values.

Today the status of English has been lowered down by making it an optional subject in our syllabus and it has been done mainly at the cry of the students and partly because our political leaders have taken an unduly gloomy and partial view of the matter. So far as the question of the difficulty of a subject goes, our school and university syllabus would be turned into a horrible affair if we just leave it at the mercy of the students. Not only English but many other subjects will be turned out if we let the voice of the students—of the mighty majority—prevail so recklessly. We must be duly aware of the grave consequences when the 'followers' usurp the place of the 'makers.'

If the voice of the man in authority, in politics, alone has the divine force, it is worthwhile to mention the views of the present Education Minister that he expressed on Oct. 13, 1967. He says that a student at the degree level should be asked to acquire a good working-knowledge of English or of any other world language or of both so that he may be ardently alive to the progressive treasures of knowledge of the world. Otherwise we shall lapse into the eighteenth century-world. The standard of education can make a rise only by the assistance of English and by the mutual cooperation of the various regional languages.

Let those with the paste-virtue of 'Anti-English' craze, those who have no tolerance and who scatter all reason and logic to the wind, remember that the Sun will continue to shine as ever, even if they tightly close all the doors, windows and holes and thus feel safe, secure, comforted and proud in the groping darkness of their cells. ●●

Essentials of Democracy

Om Prakash Sharda, II Yr. Arts

[Even the best of orders and arrangements come to nought, unless they are supported and nurtured by favourable and sustaining factors. An educated and cultured society is perhaps the most important of such factors for the success of a democracy. ---Chief Editor]

The word Democracy is derived from The word 'Demos' and 'Cretia' which mean People and Government. Abraham Lincoln defined it as, "a Government of the people, for the people and by the people." In it, everyone has a share. It is the rule of the majority. Lord Bryce defined democracy as, "that form of Government in which the ruling power of a state is legally vested, not in any particular class, but in the members of the community as a whole." Now a days, democracy means the rule of the laws.

Democracy requires an intelligent, educated and enlightened public opinion. It depends upon the expression and formulation of a sound public opinion. Sources of public opinion should be mobilised to present its right image. Freedom of speech and freedom of press are the backbones of democracy.

The success of democracy depends on a high level of general knowledge in the country, so that the people may understand the problems of the state. It will develop a spirit of independent thinking and capacity for sound judgment. Educated people may exercise their franchise properly and will not be influenced by communal or sectarian considerations.

In democracy the people must be imbued with a spirit of honesty and integrity. Co-operation, friendly association and consulting with each other are necessary. Respect for the human personality and the qualities of an ideal citizen will strengthen the unity of a nation. The citizens must know the right ordering of loyalties. There should be a social cohesion and a basic unity. Minorities should be allowed to enjoy their due rights They must feel that their interests are safely protected.

Equality in democracy should be preserved. Privileged and oppressed classes must be abolished. Thus, there will be no social inferiority. The state must adopt a socialistic goal for the fair distribution of wealth. The concept of a welfare state is essential for democracy.

Roles of political parties and local self government have a high place in a democratic set-up. Political parties must have a clear manifesto. There should be healthy traditions in the country.

To sum up, the working of democracy depends upon enlightened public opinion, general education, human qualities and state endeavours.

The Servant's Trick

Amar Vir Ghummar

Once there lived a rich farmer who had a very wise servant to cook his food. One day as the farmer was going to his work, he met a friend who gave him two mangoes, saying "These mangoes are very sweet and you would like them".

The farmer had never eaten mangoes before, so he took them home and told his servant: "I will return in an hour, so cut and keep these mangoes ready for me". The servant cut them and thought that he would take a bit. Whan he did so it tasted so good that he ate both the mangoes. He was frightened when he realized that he had eaten both of them.

Meanwhile, when the farmer was returning he met a sadhu. Going up to him he said "Please come to my house and partake of my hospitality" The sadhu agreed and the farmer thought that he would serve the sadhu with a mango. So he came to his servant and said, "Bring us the mongoes."

"The mangoes are not cut," said the servant "because the knife was not sharp" "All right,', said the farmer, "I will sharpen the knife." So he began to sharpen the knife.

The servant went to the sadhu and said. "Don't you know my master? He is a very cruel man and when he meets sadhus like you, he cuts off their ears. He has cut off many sadhus' ears." Hearing this the sadhu got up and ran away.

When the farmer returned, the servant began to complain. "The sadhu has run away with both the mangoes." The farmer replied, "Why did you let him take both the mangoes? You should have taken one from him." Then the servant said. "I called after him, but he ran away."

Hearing this the farmer set out to find the running sadhu. "Wait a minute." shouted the farmer. "Please give me one if you don't want to give both of them".

Hearing this the sadhu began to run even faster thinking that the farmer wanted at least one ear to be cut. He was soon out of sight.

The Stone and the Flower

Jainendra Kumar, P. U. Sc.

Once a flower felt tha the was always laced on the altar before the stone statue of saints and Lords, as an offering, by the devotees, in spite of the fact that it was more beautiful, delicate and charming than the statues of stone. He cried for justice to his mother 'Nature' and said, "Oh mother! I am your most beloved son, yet you have done a great injustice to me". Nature felt sorry and asked him to explain the matter fully. The flower explained her the matter and said "How is it that I, who am the most beautiful and delicate of all your sons, am offered before a hard hearted ugly stone? Is it not injustice?" Nature smiled and said, "Now from today onwards the order of things will be reversed, stones will be offered to you."

The moment stones began to be offered to him, he came again, cooing badly, "Oh mother! excuse me. Now I have learnt the truth."

A Burning Problem

I. H Hashmi B. Sc. Ag. (Final)

[Passing through a turning point in our history, the most important question for us today is how to train and educate our youth for the future citizenship of a great country and a more unified world.
---Chief Editor]

The burning problem with which every student and teacher is faced is our new educational policy After Independence we had to face so many problems like those of industrial development, Agricultural develment, growing population etc, etc. But we have not been able to solve them and the food problem has become quite an acute one. But it is regrettable on our part that instead of solving them we have been fighting over, Punjabi Suba, anti cow slaughter and anti—Hindi agitation etc. But we forget that we are living in a scientific world and we have to face an atomic era. So before saying anything in regard to our new education policy, we have to keep in mind that we neither become a Hindi enthusiast nor an English enthusiast but find out such a stable policy that satisfies our needs and promotes scientific and technological development, and at the same time brings about national integration.

Though so many education commissions and committees were set up, they could not find any stable solution to the problem. Dr. Trigun Sen said soon after accepting office as Union Education Minister, "I will try to find out whether it is possible to introduce a national policy or objective in our educational system and if so what that objective ought to be" which consists in switching over from English to regional languages at the university and college stage, but there was a difference of opinion among policy makers and Mr. Chagla resigned from the cabinet saying "New education policy will undermine the unity of the country. we Here have to analyse whether the switch over from English to the regional language will be helpful in our national interest.

At the nursery and primary school level, the mother tongue should form an integral part of the learning. Childern are generally bi or tri lingual. They pick up a spoken language easily. Therefore we can conclude that up to the secondary stage the pupil can be taught in his mother tongue beside being acquainted with Hindi. So at the school stage the 3 language formula best fits in.

But when the student ends his schooling stage and enters the university stage, he is faced with various problems. The first problem is to choose a line which is upto his taste and provides him opportunity for his future buildup. The second problem is the medium of instruction. At the university stage, the question now arises whether the regional languages should be his medium of instruction or English or he should be taught in Hindi At present in most universities English is a compulsory subject while the students are allowed to answer the question papers in Hindi also, In science and other tachnical subjects English is the medium of instruction. Now we have to see if we totally withdraw English from the Indian curricula and replace it with regional languages, what will be its effect on our eductional standard and how far we shall be able to cope with the problems of the scientific world.

English which has now unified the

intelligentsia in the country, provided a common language of administration at the centre and in the states, made mobility of professors and students possible in the country and brought about a unified bar. English which has also been called the Library language, has its own importance. In the words of the chairman of the University Grants Commission Dr. Kothari, "We are educating youth for the 20th and 21st centuries. They will be citizens of the world which is rapidly becoming 'one world'; and before the close of the century man may succeed in contacting intelligent life outside the earth. In this world of extremely rapid change and immense possibilities a person can hardly call himself educated if he does not know at least one world library language." Therefore Dr. Kothari considers it essential to know a library language for a student who is to be in contact with the whole world. The other aspect is that whether the withdrawing of English from the Indian universities will affect our national integration. As English now forms the link between various states and between the centre and states, there is a movement of professors and students from one university to the other. After the change a Bengali can hardly go to Madras university. A Rajasthan University teacher would hardly get a job in Assam or Punjabi university because he is ignorant of Assami or Punjabi. Therefore the withdrawal of English will cause disintegration. The process of disintegration has already started with the establishment of linguistic states. It would be completed if we accept regional languages as medium of instruction at the college and university stage.

Another problem which arises out of our new educational policy, is of the translation of books. Would it be an easy task ? Have we translated all the required matter in Hindi after we pledged to make Hindi our national language ? The answer is in the negative. Mr. V. V. John points out, "As for translation into regional languages Indian scholarship should recognize that it has a higher duty to perform than that of being echoes of foreign writers. In most subjects what we draw from the world pool of knowledge will have to be interpreted and transmitted to give it relevence in the Indian context. Literal translation even if we could catch up with secondary output in other countries will not meet the situation and the new copyrigt protocol (relating to translation right) agreed to at Stockholm need not send us into excessive raptures. It is not only in pure literature that translation would be an unsatisfactory exercise. The genius of each language. puts limitation on what can be translated into another language. There is no exact equivalent for "DHARMA" in English nor for 'Home' in any Indian language'. The other aspect is the scientific and technological field. Whether the withdrawal of English from this field will promote its development or hinder it The answer to this is also in the negative. Today almost all the sientific subjects are taught in English. The latest research being carried out in any part of the world is available in English. When we switch over to the regional language in scientific subjects it will make us isolated from the rest of scientific world. Moreover is it enough to translate the text books ? A chemist will need dozens of reference books to look up one important item. Shall we be able to tackle this acute problem ? It must also be kept in view that by the time we have finished translating a new book, its ideas would have become out-dated and outworn. Anyway, much time may be required by the army of translators, the printers, the critics and writers of letters to the dailies, during the period. Therefore in view of these difficulties it is not in the interest of national integration and the progress of the country in the present day scientific world to switch

over to the regional languages.

Now the question arises: what should be our educational policy ? Whether we should continue the use of English in our syllabii or we should use it only for scientific and technical fields or we should completely do away with English and what should be the substitute for English ? As a matter of fact we can broadly classify our educational field into two, scientific and technical field and non-technical field. In the former case we should not only continue the use of English, but the student taking up a scientific subject must be made proficient in it so that he may be able to tackle the scientific problems. On the other hand for non-technical subjects like Arts and Commerce, English may be dispensed with.

We should promote the use of Hindi at the university and College stage instead of changing over from English to the regional language. Hindi besides providing a common medium for non-technical subjects will promote national integration and will replace the so called link language, English. The regional language should only be limited upto the secondary stage. English may be left to the option of the student who wants to learn it as a language, but it should be made a medium of instruction for the scientific and technical subjects so that we may develop our scientific resources to the full extent with the availability of latest knowledge in the field and may come in line with the developed nations.

"That country is the richest which nourishes the greatest number of noble and happy human beings."

Ruskin–Unto This Last

"The most important thing for a nation is to produce men and women, good and true."

Jawahar Lal Nehru.

"Each nation grows after its own genius and has a civilization of its own."

Emerson–Civilization.

National Language

Kalidas Chowdhury, B. Sc. Ag. Part I

[Language, like food, can never be forced upon a people except by natural circumstances. Let circumstances, therefore, as they follow in their natural order, work out their secret alchemy to evolve a national language for India - -Chief Editor]

It is 1967, the twentieth year of independence During this time many problems have been solved. But the problem of the national language is still with us.

India's main characteristic is unity in diversity. There are so many languages and religions in India. India is a secular state, hence people of diverse religions live here with brotherly feelings. There is no religious problem at present.

Obviously there is no common language on all-India basis. But there are diverse regional languages. Hindi commands a major area. Therefore Hindi can demand the position of the national language. But Hindi has a mighty rival in English. Although English is not an Indian language, it dominates all Indian languages, even Hindi. It is better to consider first their merits and demerits.

Merits of Hindi—

(1) A majority knows Hindi and they would be benefitted.

(2) It would create national unity.

(3) It would increase the fame of this Indian language.

(4) It would help to create a socialistic pattern of society.

(5) Fascination for European education would be decreased.

(6) It would give a chance to us to be familiar with ancient Indian languages.

Demerits of Hindi—

(1) Conversion from the present medium to a new medium would cause much expense.

(2) It would favour the Hindi speaking people because with the conversion to Hindi all the recruitment tests for the central services would be conducted in Hindi in place of English. Thereby Hindi speaking candidates would get preference to qualify themselves. Hence the interest of non-Hindi speaking candidates would be hampered. Being a regional language, it lacks the quality of equality for all.

(3) It would create disparity in the education system. Hindi speaking zones would not require to learn a second language. But non-Hindi zones would have to learn Hindi as well as their regional language. So it would be a burden to the non Hindi zones.

(4) Students of non-Hindi areas would not get proper guidance to learn Hindi, because there would be a shortage of the teaching staff.

(5) It would cut off the contact with the outside world.

(6) It would not be a good medium for Science and technical education. The door of foreign education would be closed.

Demerits of English—

(1) Being a foreign language it is not appreciated by a majority of Indians.

(2) It is a very difficult language.

(3) It would decrease the fame of Indian languages.

Merits of English—

(1) It is common to all Indians

(2) It would give an equal chance to all to be absorbed in the central services.

(3) It can provide better communication with the outside world.

(4) It can give literature on any subject at a glance.

(5) It is a very rich and ancient language

(6) It can give India its traditional unity in diversity.

(7) It can give better guidance in Science, technical and higher studies.

From the above study it seems that both of them have the rights to be national languages. So on the whole it may be stated that it would be better to recognise both the languages as national languages for the time being. It would give satisfaction to both Hindi speaking and non-Hindi speaking people and there would be some unity in diversity.

"I am always sorry when any language is lost, because languages are the pedigree of nations."

—Boswell

"A little learning is a dangerous thing;
Drink deep, or taste not the Pierian spring."

Pope—Criticism

bject

guage

unity

ence,

th of
ages.
at it
the
time
both
aking
y in

A Plea to Ban Cow Slaughter in India

Om Prakash Sharda II Yr. Arts

[If cow slaughter is to be checked in India on economic grounds, it has to be accompanied by some well-considered scheme of Family Planning among cattle. ---Chief Editor]

India is inhabited mostly by the Hindus, and they worship the cow as their mother. The Hindu religion preaches that one should sacrifice even one's life to protect a cow. The various tribes of India, as the Bhils, the Gonds, the Kharias also consider the cow sacred.

India claims to be a democratic state. In democracy public opinion is always respected. As more than 80% of her people stand for a total ban on cow-slaughter, the democratic Govt. of India ought to make a law to this effect. Otherwise it will be a contradiction in terms.

India is a secular state. But the secularism of India is quite different from that of China. Whereas for China secularism means annihilation of all religions, for India it means respect for all religions. As such it should pay due respect to the Hindu religion, which has by far the largest following in this country.

Not only the Hindus but the Muslims too have shown a high regard for the cow. History tells us that there was a ban on cow-slaughter even in the Moghal period. In the time of Akbar cow-slaughter was regarded as a crime.

Our great leaders have vehemently espoused the cause of cow protection. Mahatma Gandhi, Madan Mohan Malavia, Bal Gangadhar Tilak, to name but a few, all fought for a ban on cow-slaughter. Mahatma Gandhi, the Father of our nation, gave cow-protection a higher place than even independence. Acharya Vinoba Bhave, the Sarvodaya leader, who commands respect not only in India, but the entire world, has also very forcefully pleaded for a total ban on cow-slaughter. Our highest spiritual leader, Jagadguru Shankaracharya of Puri' along with Sant Prabhu Dutt Brahmachari and Swami Ram Chandra Veer had recently gone on fast to press the demand for a total ban on cow slaughter.

The cow occupies a very important place in our economy. Ours is an agricultural country and the importance of the cow in agriculture cannot be overestimated. The holdings of the average ryot are so small that a tractor cannot be of any use to him. He uses bullocks for ploughing. As a result of cow-slaughter, the cost on bullocks is rising higher and higher; and it is becoming increasingly difficult for an average farmer to purchase a pair of bullocks.

The cow also gives us manure, which is so useful in agriculture. Even after her death, her skin and bones, hoofs and horns-all are used in various ways.

The cow has been given a special status in our constitution. Article 48 of our constitution expressly declares it the duty of the state to protect the cow and her progeny :—

"The state shall endeavour to organise agriculture and animal husbandry on modern and scientific lines and shall, in particular,

take steps for preserving and improving the breeds, and prohibiting the slaughter of cows and calves and other milch and draught cattle."

Some people give a very queer defence of cow-slaughter. They say that cow-slaughter is essential to keep in check the growth of cattle population. But as massacres and wars can be no solution to check the alarming growth in human population, so also cow-slaughter can not be a proper solution to check the growth of cattle population. It is only their vested interest that is leading these people to defend cow-slaugher, although they are making various excuses for it. They care only for the foreign currency, which this hideous business is bringing them. But this blind alley of materialism will lead them nowhere. After all money is not everything. Spiritual values should not be altogether discarded. Only a firm belief in the principles of truth and non-violence, as preached by Gandhiji, can lead us to peace and prosperity.

While the Govt. of India has declared the peacock our national bird, it is strange that it has not so far declared the cow our national animal. The Govt. should respect the sentiments of the people and soon declare the cow our national animal, otherwise the day is not far, when the democracy in India will come to an end.

"And earthly power doth then show likest God's,
When mercy reasons justice."

Shakespeare–The Merchant of Venice

"We do pray for mercy.
And that some prayer doth teach us all to render
The deeds of mercy."

Shakespeare–The Merchant of Venice

The Indian Pioneer

Nosherwan N. Doctor

[Raising India to the status of an advanced nation in science and technology, and placing it on the Atomic map of the world, was contribution enough to immortalize Dr. Homi Bhabha among the world scientists, his peculiar personal charm and proficiency in the arts, had made him almost a unique figure among them. ---Chief Editor]

The brief account of a great Indian Scientist, sketched herein by me is, from the collections which I have been able to gather.

Late Dr. Homi Jehangir Bhabha, was born in the year 1910, at Bombay, in a poor Parsee (Zoroastrian) family.

Since childhood he was not only a brilliant figure but a shining example of significant humanity. He had keen interest and enthusiasm for science. Up to the age of 17, he studied in Bombay. In the year 1927, he went to England for advanced studies. He did his graduation in Mechanical Science and took Ph. D from the Combridge University.

At Cambridge, he won two Scholarships, named 'Rowerbell' and 'Sir Ic. Newton' in the years 1932 & 1934 respectively. He was F. R. S. at the age of 31 years, in 1941, which was one of the highest honours ever conferred upon an Indian citizen. In 1940, the late Dr. Bhabha was nominated as Reader in Theoretical Physics at the Indian Institute of Science, Bangalore and remained there as professor, from 1942 to 1945. After the Independence of India, he was elected as the First Chairman of the Indian Atomic Energy Commission.

Dr. Bhabha was the first Indian scientist to achieve great distinction and recognition as a physicist for this pioneering research work.

The qualities, experience and the ability of the late Dr. Bhabha made him receive the Adams prize and honorary Doctorates in Science from several Indian & Foreign Universities in appreciation of his genius and knowledge. The Adams prize was awarded by the University of Cambridge, England, in the year 1942. The Hopkins prize of the Cambridge Philosophical Society was rewarded to him in the year 1948. He was the President elect of the Indian Science Congress in the year 1951. The President of India, in the year 1954, honoured Dr. Bhabha with the honour of Padma Bhushan. Late Dr. Bhabha was elected an honorary Fellow of the American Academy of Arts and Science in the year 1959. Due to his world wide fame and ability the world Academy of Arts and Sciences elected him a Fellow Member.

It was with the initiative of Mr. Bhabha, that the Tata Institute of Fundamental Research was founded in the year 1945 and there he remained as the Director and Professor of Theoretical Physics since its foundation. At the Indian Atomic Energy Commission, the Late Dr. Bhabha had been the Chairman, since 1947 and Secretary, to the Government of India, in the department of Atomic Energy, as well as the Director of the Atomic Energy, Establishment, at Trombay.

Mostly he devoted his life to the research of Atom for the use of human welfare till

his untimely sad death by an accident in an Air crash on 24th January, 1966 Since that date the great Scientist's light has gone off the Indian soil. It was an untimely, great and dynamic loss to India and the Indian Nation on the whole and definitely an irreparable loss to the grieved family of the Late Bhabha. Posthumously, the Post and Telegraph department of India printed a Postal Stamp of 15 Paise denomination, in the memory of the great Scientist of India.

O Great Scientist Bhabha ! my script cannot explain thy innumerable works and the last contribution to the Indian Nation made by thee, by the manufacture of the element, which is stated to have crashed the the steel mob'le Fort of American make—the tank. Should we not be proud of the Great Scientist who saved the Nation in a deadly war and replied to the challenge of the manufacturers of the so-called steel mobile unbreakable Fort.

I, take my hat off and pay all respects to the worthy mother who gave birth to the great scientist, the Late Dr. Homi. J. Bhabha and made him a world renowned Indian scientist.

A Human Being is Never Born Great,
His Ideas And Works Make Him Great.

"To look at his picture as a whole, a painter requires distance; and to judge of the total scientific achievement of any age, the stand point of the succeeding age is desirable."

—*John Tyndall*

"I do not know what I may appear to the world; but to myself I seem to have been only like a boy playing on the seashore, and diverting myself in now and then finding a smoother pebble or a prettier shell than ordinary, whilst the great ocean of truth lay all undiscovered before me."

—*Brewster's Memoirs of Newtons*

Diseases of Bajra In Rajasthan

Suresh Kumar Mathur B. Sc. Ag. (Final)

[Prevention and cure of crop diseases is perhaps as important as the production of crops through high-yielding varieties. All labour and ingenuity in crop production comes to nought otherwise
---Chief Editor]

Bajra is one of the principal millets growing in India. The origin & history of Bajra, also known as pearl or Cattail millet, is still very imperfectly known. It is grown in kharif (warm & rainy season) season i. e. in July or late June.

A number of diseases are known to occur on the bajra crop. The most important diseases found in Rajasthan and **affacting the yield** are given below :—

1. The green ear disease or downy mildew (**Sclerospora-graminicola**)
2. Smut. (**Tolyposporium penicillariae**)
3. The Ergot disease (**Claviceps Sp.**)

1. GREEN EAR OR DOWNY MILDEW DISEASE

This is supposed to be one of the most common diseases of bajra, known from all over the bajra growing tracts of Rajasthan. The incidence of this disease is reported to be high in low lying areas. The average losses due to this disease can be estimated at about 45% of the total production **during the** years of heavy disease outbreak. This disease is caused by a fungus parasite, Sclerospora graminicola.

Symptoms :—

1. The principal symptom is produced in the inflorescence where the solid spicate ear is transformed wholly or in part into a loose head, composed of small, twisted, leaf-like structures which give it a green appearance.

2. There may be a partial or complete transformation into a loose head of various shapes.

3. As a result of these changes, the appearance of the diseased ear is clearly marked out, which results into sterility.

4. In case, the attack is partial the unaffected part ripens and normal grains are formed. Generally, complete or nearly complete sterility results.

5. The affected plants remain stunted with a tendency to give out tillers.

6. In the older plants, the leaves enclosing the ear are mainly affected and get whitened and dried up.

7. These leaves often get twisted and crinkled.

Control

The disease is at first soil-borne and then becomes air borne. The only way to keep it down is by removing and burning the debris or plant remains, thus preventing further infection and spread through the **sexual stage of the** fungus. Breeding Bajra resistant variety for this disease, is the second alternative. Crop-rotation, avoidance of low lying fields and water logging may prove to be helpful in reducing the source of infection.

2. SMUT

This disease although of a common occurence in all the bajra growing regions of India, is not considered to be of major importance. It is caused by the fungus parasite **Tolyposporium penicillariae**

Symptoms :—

1. Only a few ovaries in an ear are affected by the disease.

2. The infected ovaries may be scattered or occur together in patches or confined to one side or towards the base of the ear beneath the leaf sheath.

3. The ovaries are transformed into oval or pear shaped protruding bodies known as sori, which are greenish, when young and turn reddish brown, **instead of** red, on age.

4. The sorus is twice the diameter of the normal grain, and is 3-4 m. m. long and 2-3 m. m. broad at the tip, may be rounded or conical in shape and covered by a tough membrane composed of host and fungus components; containing inside a granular blackish powdery mass, the smut spores.

Control :—

The disease is soil borne and is spread by air. Treatment of seeds by chemicals is ineffective. Affected ears may be removed by periodical inspection of the field, but this is also uneconomical because only a few grains are affected. The best control measure is to keep the field clean of all the infected plant remains of the ears and to follow crop rotation of 3 years at least as the **reproductive bodies survive** for 3 years or so **within the soil**. Breeding resistant varieties may prove to be more effective.

3. RGOT

This disease was reported for the first time in India in 1956-57, especially from and districts of south Satara, Kolhapur, Sholapur, Bijapur etc but-now-a days this disease **is also being encountered** in Rajasthan.

Symptoms :—

1. When the crop is in the flowering stage, these symptoms are conspicuous. A sugary secretion **which** is pinkish in colour runs off and spreads over the ear and even on the leaves.

2. Late in the season, affected ovaries get transformed into elongated dark-colourd, slightly pointed bodies of a wheat grain size.

3. The infection is noticed only on a few grains on the ear.

Control :—

The **fruiting bodies of this fungus Scler otia,** may get mixed up in the seed and may serve as a source **of infection on the crop.** It is desirable to procure disease free seeds from some disease free locality. The local seeds should be stocked in 20% **Commercial** salt solution. This helps in eleminating **the** light seeds and **fruiting bodies of the fungus,** which float on the surface. Later the healthy seeds should be washed twice or thrice in clean water and dried in the shade before sowing.

References

1. B. B. Mundkur—Fungi & Plant diseases
2. G. L. Chopra—A Class book of Fungi
3. E. J. Butler and S. G. Jones—Plant Pathology
4. Rajasthan Agricultural Diary 1967

छात्रावास के वार्षिकोत्सव पर

छात्र भोजन करते हुए

श्री शिवचरण माथुर

छात्रावास के सब से अच्छे कर्मचारी को पारितोषिक देते हुए

आचार्य द० वाब्ले कॉलेज के प्रांगण में वृक्षारोपण करते हुए
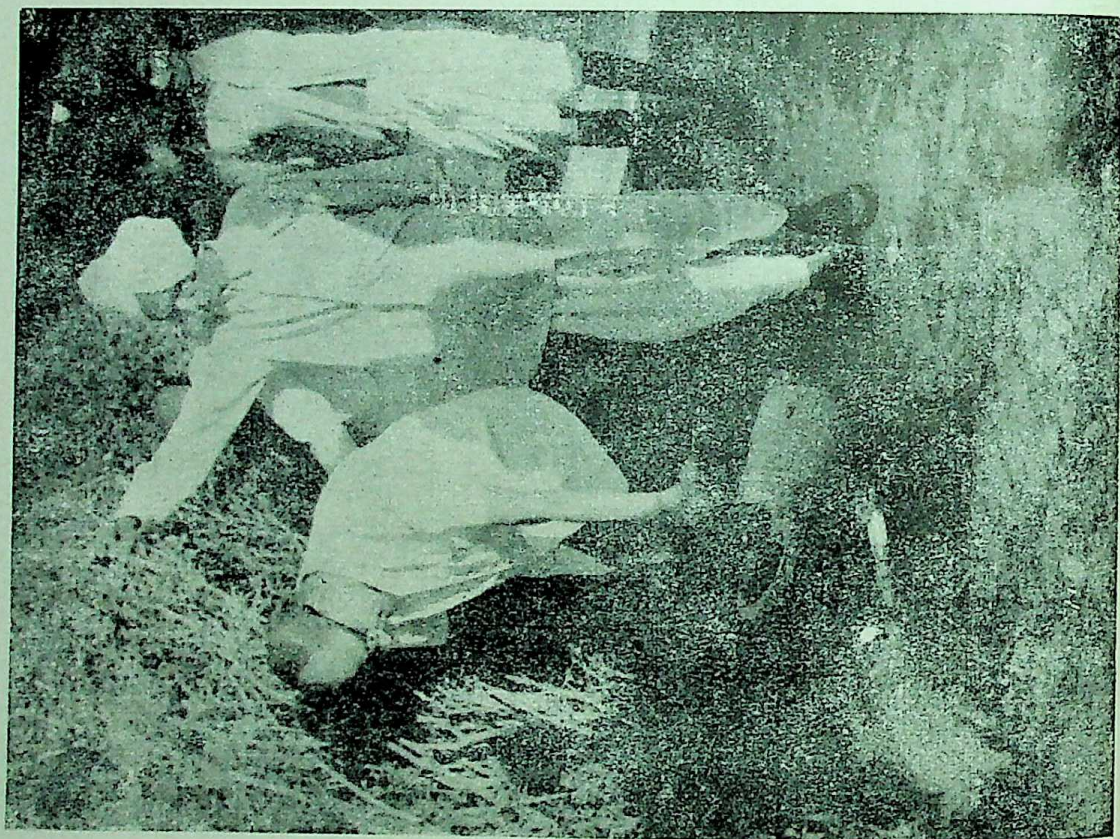
श्री दयाशंकर, प्रथम वर्ष कला
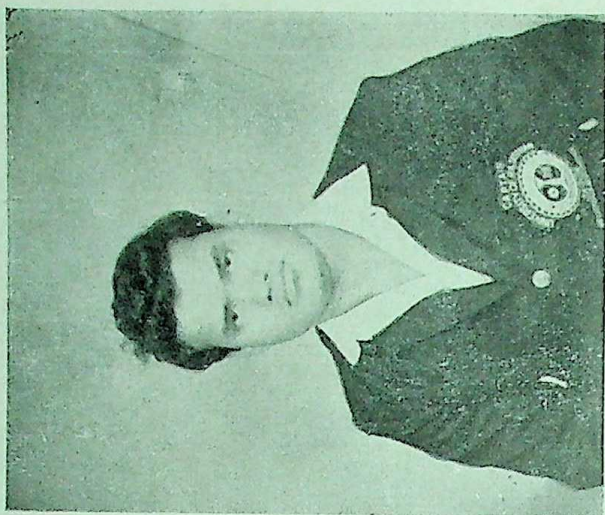
युनिवर्सिटी भारोत्तोलन प्रतियोगिता में प्रथम, कॉलेज तथा युनिवर्सिटी भारोत्तलन टीम के कप्तान १९६७-६८

Important Plant Diseases And Their Control At A Glance

T. C. Gupta, M. Sc. (Ag.)

[It is not only the methods of improved cultivation, that demand our close attention and proper utilization, but also the ways of saving the plants from disease and premature destruction.
---Chief Editor]

The following are the plant diseases and their control measures.

Wheat

Foot rot–Treat the seeds with Agrosan G. N. at a rate 70 gms per md. seed.

Rust–(1) Sow improved varieties such as N. P. 718, C. 591 & R. S. 31–1.
(2) Sow early maturing varieties.

Loose Smut–(1) Remove the infected ears.
(2) Solar energy treatment which consists of soaking the seeds in cold water from 8·0 A. M. to 12·0 noon and then making a thin layer of seeds from 12 to 4 P. M. in the month of May or June. Use it as seed for the next sowing.

Ear Cockle–Prepare a 20% solution of salt (1 kg. salt, 25 kg. water) and float the seeds. Remove the floating seeds and wash the rest of the seeds to be used for the next sowing.

Barley.

Foot rot–Treat the seeds with Agrosan G. N. at a rate of 116 gms. per md.

Loose Smut–(1) Remove the infected plants.
(2) Use solar energy treatment as given above.

Covered Smut–(1) Remove the infected plants.
(2) Treat the seeds at a rate of 116 gms. per md. with Agrosan G. N.

Leaf stripe–Treat the seeds with Agrosan G. N. at a rate of 116 gms. per md.

Rust–Use rust resistant varieties.

Gram.

Wilt–(1) Remove the stubbles and roots of infected plants.
(2) Late sowing.
(3) Use disease resistant varieties.

Potato

Early blight–Spray Bordeaux mixture upto the first week of December at 15 days interval.

Late blight–Spray Bordeaux mixture upto the harvesting time at a interval of 15 days

Leaf Curl–(1) Remove the infected plants.
(2) For controlling the spread of insect vectors of the disease dusting of 5% B. H. C. has to be conducted.

Linseed.

Wilt–(1) Use the crop rotation of 3 years in the infected fields.
(2) Use disease resistant varieties.

Rust–Use rust resistant varieties.

Jowar.

Grain Smut–Treat the seeds either with Agrosan G. N. at a rate of 70 gms. per md. or with sulphur dust at a rate of 116 gms. per md.

Leaf spot–Spraying of Bordeaux mixture.

Bajra.

Ergot–(1) Remove the infected parts.

(2) Use the crop rotation of 3 years in the infected fields.
(3) Treat the grains with 20% solution of salt (1 kg salt & 5 kg. water) and remove the floating ergot bodies. Wash the seeds with fresh water twice or thrice.

Smut–Remove and destroy the infected parts.

Green ear–(1) Remove and destroy the infected parts.
(2) Use disease resistant varieties.

Sesamum (til)

Blight–Spraying with Bordeaux mixture soon after observing the symptoms of the disease.

Phyllody–Destroy the diseased plants.

Ground nut.

Blight–Treat the seeds with Ceresan at a rate of 93 gms. per md.

Tikka disease–Spraying of Bordeaux mixture soon after observing the symptoms and repeating the spraying at a interval of 15 days.

Cotton.

Angular leaf spot–Treat the seeds with Agrosan G. N. at a rate 116 gms. per mds.

Root rot–(1) Regulate the time of sowings and recommend late sowing.
(2) Mixed cropping is benefecial.

(3) Use green manure of guar.

Leaf spot–Spraying of Bordeaux mixture soon after observing the sypmtoms of the disease.

Wilt–(.) Mixed cropping with other crops is benefecial.
(2) Use disease resistant varieties.

Sugar-Cane.

Red rot–(1) Use disease free seed without any redening.
(2) Remove and destroy the infected plants.
(3) Stop water logging.
(4) Use disease resistant varieties.
(5) Ratooning should be avoided.

Whip smut–(1) Use healthy seeds for sowing after dipping into Bordeaux mixture.
(2) Remove the smutted portions in April-May.
(3) Ratooning should be avoided.

Albino virus–(1) Destroy diseased plants.
(2) Use seeds from healthy plants.

Maize.

Downy Mildew–(1) Spraying of Bordeaux mixture soon after observing disease symptoms.
(3) Avoid water logging in the fields.

Chillies.

Leaf curl–(1) Remove the diseased plants.
(2) For controlling the spread of insect vectors of the disease dusting of 5% B. H. C. at a rate of 15 lbs. per acre is recommended.

Fruit rot–Spraying of Bordeaux mixture at a interval of 15 days.

Cucurbits.

Powdery Mildew–Dusting of sulphur dust at a rate of 20 lbs. per acre or spraying of 1 lb. soluble sulphur dissolved in 50 gallons water.

Downy Mildew–Spraying of Bordeaux mixture (4 : 4 : 50) at a interval of 15 days.

Grape vine.

Powdery
Mildew–Dusting of sulphur dust at a rate of 8-15 lbs. per acre.

Downy
Mildew–Spraying with Bordeaux mixture.

Papaya.

Stem rot–(1) Stop water logging.
(2) Destroy the diseased plants.
(3) Cut the diseased part and treat with Bordeaux paste prepared as follows:–
Dissolve 4 lbs. Copper sulphate in 3 gallons water Dissolve 6 lbs. lime in 3 gallons water. Mix the two solutions to get the above paste.

Leaf curl–Destroy the diseased plants.

Mango.

Powdery
Mildew–Dusting of sulphur or spraying of 1 lb soluble sulphur dissolved in 30 gallons water.

Malformation–Cut the malformed organ and spray 0.3% Folidol to kill the insects.

Anthracnose–Remove the diseased part and spray Bordeaux mixture.

Citrus Plants.

Canker–Spraying of Bordeaux mixture.

Die back–Cutting of the dead and diseased twigs. Spray Bordeaux mixture or 0.3% solution of copper fungicides, first spraying before fruit setting, second before monsoon, and third after the rain.

Fruit fall–Cutting of the dead and diseased twigs. Spray Bordeaux mixture or 0.3% solution of copper fungicide, first spraying before fruit setting, second before monsoon, and third after the rain.

Paddy.

Root rot–Treat the seeds with Agrosan G. N. at the rate of 70 gms. per md.

Leaf spot–(1) Treat the seeds with Agrosan G. N. at the rate of 70 gms. per md.
(2) Spraying of seed beds with Bordeaux mixture.

"The number of diseases is a disgrace to Mankind."

Telemachus — Bk. XIII

"Better use medicines at the outset than at the last moment."

Pubilius Syrus

"To fear the worst oft cures the worst."

Shakespeare—Troilus and Cressida.

Hydroponics (Soil less culture)

By U. C. Pandey M. Sc. (Ag.)

[So vast are the possibilities of getting food, from all sorts of discovered and undiscovered sources, provided they are tapped properly by science, that, the world need not suffer from hunger for many more years to come ---Chief Editor]

Dr. Gericke in the year 1929, grew tomato in water and named this discovery as 'Hydroponics,' a word derived from Greek, meaning literally "water working." Plants are grown in water without soil and the nutrition is supplied to the plants in the artificial form through the solutions.

It has attracted world wide attention because of much higher crop yields and the fact that hydroponics can be used in places where ordinary agriculture or gardening is impossible. The countries which are worried by overpopulation and dearth like India, can use it to multiply their production of food stuffs. It has special significance for crowded towns where people do not possess any piece of land. They can grow vegetables, flowers and even cereal crops in window boxes or on house roofs. With its help it is now possible to grow crops even in areas like the desert, and in rocky and stony lands in mountaneous districts.

In India hydroponics was started in the year 1946 by the Bengal Govt. at Kalipong. The results at this research farm were very much encouraging during the experimental period from 1946 to 57.

Crop	Agricultural yield per acre in pounds	Hydroponic yield per acre in pounds.
Rice	1,000	11,400
Wheat	600	4,100
Potato	22,000	80,000
Peas	2,000	14,000
Maize	1,500	7,000
Tomato	5 to 10 tons	180 tons

The main problem in soilless culture is the supply of food material to the plants in an adequate quantity and for this a little knowledge of chemistry is essential. The second consideration is that there should be plenty of air and sunshine. The five essentials of hydroponics i. e. water, light, air, mineral salts (major and minor elements) and suport for the roots should be provided properly to grow a healthy crop.

Soil is a good reservoir of water, hence a basin is needed to hold water. It may be of any material but should not be made of zinc, otherwise it will react with the chemicals and injure the plant roots. If it has to be used, it must be coated with asphalt so that the water may not come in contact with the metal. The basin should be big enough to hold sufficient water, but it must not be more than 6" deep.

Proper arrangements for the aeration of plant roots is necessary. If there is no arrangement for the circulation of air in water by means of some air pump, either a space of about 1" may be left between the frame and the water of the basin, or the water should be stirred often. As the roots grow, the space between the bed and the water level in the basin may be further reduced to about 3" depth. Concrete basins about 10 to 20' long, $2\frac{1}{2}'$ to 6' wide and 6" deep may be constructed. They may be constructed, in verndahs or on open roofs and may be filled with water.

Nutrient Solutions—Experience only can decide what formula is best suited to a

particular locality depending upon the nature of water supply. For the hot and sunny India or other tropical countries the most suitable ratio has been found to be.

N—2 parts
P_2O_5—1 ,,
K_2O—2 ,,

But in places of cloudy and wet months the following ratio will he more applicable.

N—2 parts
P_2O_5—2 ,,
K_2' —3 ,,

The followiug formula has been evolved and utilised with success in many parts of India.

Fertilizer salt	Quantity in ounces	Elements Supplied
Sodium nitrate	12½	N
Superphosphate	7	P, Ca
Pot. Sulphate	4	K, S
Magnesium Sulphate	4	Mg, S
Trace elements	½ dram	
1. Zinc Sulphate		Zn
2. Magnese Sulphate		Mn
3. Boric acid powder		B
4. Copper Sulphate		CU
5, Iron Sulphate		Fe

Technique of preparation—

After being carefully weighed or measured properly, the major nutrient salts should be well mixed together and lumps broken into fine powder. This may be done in a bucket with a wooden spoon, mallet or other blunt headed instrument. For small scale household hydroponics it is unnecessary to bother about trace elements, since sufficient quantities of these occur as impurities in the main fertilizer chemicals. But when they are used, it is simplest to weigh out a couple of ounces at a time, and after thorough mixing, which can be done with a pestle and mortar, divide them up into small quantities of a dram each for convenience of application The mixture of trace elements is separately prepared and two ounces of trace elements mixture consists of—

Zinc Sulphate	3 drams
Magnesium Sulphate	9 ,,
Poric Acid powder	7 ,,
Copper Sulphate	3 ,,
Iron Sulphate	10 ,,
Total	32 drams

Note—All sulphates are single
16 drams = 1 ounce (Approx)

Nutrients should never be allowed to get damp or wet before application. For this reason a dry container or suitable store place is essential. This also applies to compound fertilizer or tablets specially made for hydroponics.

Method of application—The mixture may be prepared in advance and kept in a jar. In the beginning it may be applied in the dry form at the rate of 1 oz per square yard to the bed but later on it is applied in the basin or cistern. The frequency of nutrient mixture application may be regulated according to the growth response of plants, but it is always safe to apply at an interval of about 8 or 10 days. The mixture has been tried on soyabean, lobia, tomato, lettuce, beet root, acroclinum, dianthus and mesambranthemum.

Desirable variations may be made in the application of the nutrients according to the weather. During cloudy and dull rainy season, specially in hill districts of India, the amount of potassium may be increased because this element is used more in such seasons. At the same time, for economy sake reduce the nitrogen slightly since crops only need nitrates in very lage amounts on bright sunny days.

Maintaining the pH.—The reaction, that is alkalinity or acidity of the solution applied, is very important. Most plants prefer slightly acid reaction and it is measured by means of pH scale This refers to the hydrogen ion concenteration. It is vital to maintain the right degree of acidity in hydroponic beds, since no solution over pH. 6·5 is really satisfactory for soil less growth The reaction of a mixture is ascertained by the use of a coloured indicator. For average operator B. D H. universal will be quite satisfactory. To test the value of any formula, it is simply necessary to add a little of it to the local water in correct proportions. Further when the mixture has quite dissolved, a few drops of indicator are added to the resulting solution. careful matching of the colour change is done, which takes place in about a minute Red is strongly acid and green too alkaline. A yellow colour indicates a pH of between 5·5 and 6·5, and means that the mixture is just right for plant culture. Periodic tests of moisture contained in the growing medium are useful as a check. Most plants prefer an acidity of pH 6·0

Seed bed—In hydroponics, the preparation of the seed bed is very essential because it serves the purpose of the soil It should be made of porous mat of litter which is suspended over the nutrient solution on a wire netting. Materials which are generally used are leaf mould, sawdust and straw. A wooden frame which just covers the basin is first prepared and the height of the frame is kept about 4″. A wire net with a mesh of about ½″ is fixed to this frame over which the litter is spread. To avoid any sagging of the net cross-bars may be provided below the wire net, over this net a fine bed of the litter is prepared. The thickness of the litter varies from 2″ to 3″.

Seed sowing—The seeds may either be sown directly or seedlings can be transplanted in these beds. No chemical mixture is applied for the first two or three days after transplanting.

Watering—Watering is done twice daily in summer but in winter only once or twice a week is sufficient. Watering is done simply, placing the pipe at one end of the basin or cistern. The cistern should never be flooded, only keeping the basin slightly moist can serve the purpose.

Staking and spraying—Staking may be done of the wooden sticks or cement poles and may be constructed to train the vine crops. Inter cropping is also practiced to save the space D. D. T. (5%) spray is very satisfactory for the elemination of insect and pests.

References—(1) Govt. Agriculture college journal 1957.

(2) Hydroponics (Bengal system) By J. Sholto Douglas.

Audio-Visual-Aids in Education

Nathu Lal Saravagi, B. Sc. (Ag) Final

[The uphill task of catching up with the advanced countries in the matter of providing a bare minimum of basic education to our vast masses, can perhaps be accomplished only by adopting the short-cuts provided by the Audio Visual Aids in Education.--Chief Editor]

"The number of people who can read is small, the number of those who can read to any purpose, much smaller, and the number of those who are too tired to read after a hard days' work is enormous. But all except the blind and the deaf can see and hear"—George Bernard Shaw.

Audio-visual education in India has a long past The pioneer work in this direction was done by the state of Bombay in 1920. The Govt. of India opened a section on Audio-visual aid in 1947, as a part of the Five Year Plans under post war educational development scheme. A great deal of progress has been made since then. A number of conferences and seminars have been organized both by the centre and the state from time to time and their suggestions and proposals have been favourably considered by the Union Ministry of Education. A national institute for audio-visual aid has also been started.

Audio-visual aids are devices or procedures that help to make learning more meaningful, more interesting and more effective. These aids help in completing the triangular process of learning

'The teacher must show as well as tell'.

The Audio-visual aids are the new media for communication. These aids focus attention, arouse interest, add to information, motivate action and stimulate mental and physical activity. Audio-visual aids save time and make learning solid and durable. Audio-visual aids simplify the teacher's task without undermining efficiency. Visual education is a method of imparting information which is based on the psychological principle than one has a better conception of the thing he sees than of the thing he only reads about or hears and discusses.

A good teacher makes use of visual aids and Audio visual aids on every possible occasion, such aids capture and hold the interest of an audience, clarify the lesson taught, vitalize instruction, and sustain interest

Forms of Audio-visual aids :—

These are divided into two. (1) Projected and (2) Non projected.

Projected aids—consist of films film strips, and slides.

Non Projected aids—These consist of Black Boards, bulletin boards, charts, posters, maps, globes, graphs, diagrams, pictures, models, gramophone records, tape records, radio broad casts, school museums, journeys and excursions, dramatisation, story telling exhibits, puppetry, cartoons, mock up and text books

All these aids supplement the verbal instruction given by the teacher. They are the stimul if or learning the why, how, when, and where of things. They attract and hold the attention, aid retention and assist in forming correct images. The hard to understand principles are usually made

clear by the use of clearly designed teachinng aids

Films of entertainment and instruction are undoubtedly the biggest ingle means of mass communication to-day. All India Radio programmes, concerts, features, talks. plays, reviews, discussions-are heard by rural and urban population and provide information and education.

The A. I. R. has started Experimental Educational Telivision in Delhi in 1959. Four experts from the U. S. A. visited India in 1959 to discuss the use of Telivision in accelerating India's extensive literacy drive. It has been estimated that millions of adults in India could be taught to read and write in seven basic tongues, by a telivision system costing less than 50 N. P. per person. Educators in other parts of the world are also studying the use of telivision to solve their own educational problems. Teachers for special remedial classes can be released and a higher quality of instruction can be offered, since teachers assigned to telivision have more time to plan and organise their materials. It offers broader service with fewer teachers. We can have socialization in education. Schools in rural and remote areas can be imported the same grade of education as given to pupils in centrally situated and better equipped schools.

The programmes at present are centered mainly on education for adult citizenship and are viewed at 66 'tele clubs.' Another series of programmes was started in August 1963, after the installation of 600 telivision sets in 250 Delhi schools, for the teaching subjects like Physics, Chemistry and Languages. This novel method of teaching, the first of its kinds in Asia, will be made available to the students in Delhi, at a certain level, through the telivision class rooms, teachers and work shops.

The Film Division is one of the biggest documentary producing centres in the world. It produced 87 documentary films of educative, cultural and social value in 1960 besides 53 newsreels.

Film strips and film slides are the main features of our evening programmes. They are the best advertisements of our work and whenever announcement is made that there is to be a show of film strips, crowds of people are sure to be there.

Generally educational films are well received by the peoples. There seems to be a trend towards this type of film. Therefore the films do a great deal of good, first by making the people think and second by giving them a solution to a problem confronting them. The cinema is making tremendous progress and a contribution to every aspect of modern progress eg Science education, health and industry.

Black-board is the oldest and the best friend of a teacher. It encourges students' attention and participation in class work. Bulletin boards are also used for motivating them to action.

Visual sensory aid provides multiple sense appeal. such appeal makes use of a great variety of aids and devices, visual, auditory, factual, gurtatory and olfactory. Pictures, models, radios, diagrams, charts or any thing that opens a new channel to the mind or gives a new stimulus to the will is an aid to teaching In teaching such aids are invaluable in vocational education, where such aids have become major tools of instruction.

The childerns' film society was established in 1955, with the specific aim of undertaking and promoting the production of films specially suited to children. It is doing commendable work and their films produced so far are becoming popular day by day. The society has set up a National centre of films for children affiliated to the inter national centre of films set up at Brussels, under the sponsorship of UNESCO. The Ministry of education has opened a Bal-Bhawan at Delhi, for providing instructive amusements to children.

The Museum is generally acknowledged to be a special and unique contribution to teaching. These are the store houses of world's priceless assets. The accumulation of scientific, technical, artistic and cultural materials are of immense help to the students, to understand and digest his class room work. We can achieve spectacular results if there is closer relationship between the museum, the public and the schools.

Radio is one of the most powerful and cheapest implements for mass communication. School programmes ought to be lively and interesting and they should supplement class room work. Radio is an excellent tool for improving languages. Programmes on literature, drama and music, news and documentry broadcasts radio interviews with eminent personalities, all help to make teaching real and life-like.

Home-made apparatus can very easily be constructed with simple articles found in homes and other places. By using old tins, wires and nuts, screws cells, bottles, jars and chemicals, we can make apparatus to perform hundreds of experiments. What is required is a little initiative and ingenuity on the part of the teacher. This creative work of making models makes the children understand things in a better way. Through it they create their ownselves and enrich their interest. Making models means learning by doing.

Adult education is a phrase originally meaning education of adults who have not been properly educated as children. The necessity of a system of pedagogical methods, specially designed for adults, has only lately been felt. In India it is confined to the removal of illiteracy from the masses and it is possible only through the audio-visual aids.

We are living in an era of communication, one of its most dominant characteristics is the multiplication and the rapid improvement of the means, where-by people achieve contacts and by contacts educate themselves. These contacts are mostly obtained by the various methods and techniques. Radio, gramophone, tape record, films, movies, charts etc. are called mass media of communication. This mass media that we may call audio-visual-aids have created a new cultural force and offer bright hopes for the future.

Reference—

Audio-visual-aids in Education—by C. L. Bhalla.

Agricultural Education in India

Suresh Kumar Baijal B. Sc. Agri. (Final)

[The imbalance in our Indian economy, caused by neglecting agriculture, during the first three five year Plans, can be corrected now only by realizing the importance of agriculture in an agricultural country and by laying the greatest possible emphasis on agriculture and agricultural education, during the fourth five year Plan. ---Chief Editor]

Brief History:—The first Agricultural College was established at Sabour in the old Bengal Presidency. It was however, closed down in 1923 after the separation of Bengal and Bihar. The reason for closing down was stated to be non availability of sufficient number of suitable students. Five Agricultural Colleges were located at Layalpur (Now in Pakistan) Kanpur, Nagpur, Poona and Coimbatore. Till the Mid-nineteen thirtees these colleges remained the only ones. Prior to this in 1914 the Allahabad Agricultural Institute was established through the efforts of Dr. Sam Higin Bottom. The institute however did not attain a College status till 1923. The Khalsa College at Amritsar started an Agricultural section in 1923. At present there are about 54 well recognised Agricultural Colleges. In addition to these are about 23 small Colleges which have very little standing on account of the lack of facilities.

Levels of Agricultural Education:—

Agricultural education in India has the following levels.

1. Agricultural Schools:–In some states there are schools imparting training for a years'diploma course e.g. in U.P. such schools are at Bulandsbahar and Ghazipur, in M. P. such schools are at Gwalior and Panna. They offer courses in Agriculture, dairying, horticulture, plant protection etc. to train persons for jobs like field man, kamdar etc

2. Intermediate Colleges:–In some states there are Intermediate Colleges which offer two years' course leading to inter Agriculture after high school education. In many states such courses have been changed with the higher secondary pattern where one year from this education has been added to the High School courses and called as Higher Secondary. In U.P. the intermediate course still continues.

3. Agriculture Colleges:—Agricultural Colleges in India can be categorized as follows.

(a) Private Agricultural Colleges lik Jat-Vedic College, Baraut (U.P) A S. Jat-College, Lakhoti, (U P.) B.R. College Agra, Allahabad Agricultural Institute, Dayanand College Ajmer etc.

(b) Government Agricultural Colleges—Like Govt. Agri. College Kanpur (U. P.), the former Govt. Colleges of M. P., Punjab and Rajasthan which have been transferred to Agricultural Universities during the past four or five years.

(c) Agricultural Colleges which are the campuses of constituent Colleges of Agri. Universities and are adopting the land grant College pattern of the American Universities. Some of these Colleges impart training for (I) B. Sc. (Ag) degree–which is a two years' course after Inter Agriculture. These are affilliated Colleges of the general universities like Agra university, Bihar university. (II) B. Sc. Ag. four years integrated course in states where Higher secondary system has been adopted. In this four year integrated course there is one class, rather say additional class called as Pre–professional Agriculture. This is

considered to be the most important class of this course as it gives fundamental ideas of various subjects e.g. Botany, Zoology, Physics, Chemistry, Mathematics General Agriculture, Economics and English. (III) M. Sc. Ag. degree in subjects like Extension, Horticulture, Agronomy, Ag. Chemistry, Ag. Botany, Plant Pathology, Entomology, Agri. Economics. (iv) Ph. D. Degree courses–Some of the colleges provide facilities where private candidates who are registered with some universities for the Ph. D. degree can work with some teachers or can use facilities of Laborataries etc. Some colleges register ragular candidates who get some fellowships from the universities of which the college is a constituent college or where the I. C. A. R or the University Grants Commission has agreed to give fellowships to candidates.

4. Agricultural Universities in India :— Because of the inherent drawbacks in the old British pattern of education it was necessary to adopt the Land Grant College Pattern of the U. S. A. The first attempt was made in U. P. When Dr. Dean Hannah of the University of Illinois was requested to prepare a blue print for Indian Agricultural universities. The University Education Commission headed by Dr. Radhakrishnan in 1948, made recommendations for Agricultural Universities with support from the U. P. Govt and the U. S. Aids Organization. A university was established at the Tarai State Farm of 16000 acres at Rudrapur, Pant Nagar, in Nainital Distt. The Act for establishing this university was passed in 1958. It started functioning from July 1960 It was followed in Punjab by passing an Act in 1961. This University in Punjab has two campuses, Ludhiana and Hissar. The Raj. Govt. passed its Act for establishing an Agri. University in 1962. Its inauguration was done in August 1962. This university has two campuses : Udaipur and Jobner. Then came the Orissa Agri-University at Bhubhneshwar in August 1962. Andhra Pradesh established its Agricultural university in 1963, Mysore and Madras in 1964. The M. P. passed in 1963 its Act for establishing the Jawaharlal Nehru Agricultural University. This university has 8 Constituent Colleges, 6 Agricultural Colleges at Jabalpur Gwalior, Sehore, Rewa, Indore aud Raipur and two Veterinary Colleges at Jabalpur and Mhow.

5. Indian Agri. Research Institute :— This institute was formerly at Pusa in Bihar, before the earthquake of 1934. After that it has been shifted to New Delhi. Before 1948 it was called as Imperial Agricultural Research Institute and then it was named as Indian Agri. Research Institute. Before 1961 it was imparting a training for a two years' diploma in research called Associate of I. A. R. I. in Agronomy, Plant Pathology, Entomology, Botany, Horticulture, Chemistry. After that it has started giving masters degree or Ph D. with a regular course of two years for candidates who join after B. Sc. Ag. or M. Sc. Ag. from other colleges. Its teaching system is like that of other agricultural universities in India.

Drawbacks in the Old Pattern :—The old system was designed by the British rulers who wanted to train persons to work as their agents. The system could not educate persons to train the farmers in the techniques of raising better crops, animals etc. The training had the following defects :—

(1) Syllabus :—The syllabii which the the teachers were supposed to teach were designed by persons who could manipulate to be members of Academic Councils, Boards of Study etc. In a majority of the cases the teachers had no hand in preparing the syllabii, they were required to teach.

(2) The External Examination System :— In the external examination system, (which was followed at the colleges which have come now under the Land Grant Colleges pattern or in the colleges which still have the old system), the teacher of the subject had or has no hand in the evaluation of his students. The papers are set by persons who do not know what has been taught. Many examiners are not teachers and get the examinership as a favour or reward from some dean for their friendship or relationship with him. For Practical Examination one external examiner was appointed from some other institute or even from the Govt. Agri. Department. Because he was the convenor, the internal examiner who was a college teacher had no say.

(3) Admission of Students :—About 56% of the students admitted in Agriculture and Veterinary colleges are persons who have been raised in urban areas, because our preference is for those who offer science in their school education. Such candidates cannot develop a bias for agriculture and village work.

(4) Lack of Facilities :— Many colleges do not have even basic equipments, transport facilities to take students to villages. They do not have sufficient space in Laboratories. The number of teachers is small. It has been observed in many places that one teacher teaches more than one subject, while he is M. Sc. in only one subject. The pay rules of teachers and the benefits and facilities are so poor that these colleges cannot attract better teachers or cannot retain them.

(5) Curriculum :—There are colleges which do not have subjects like Extension, Rural Sociology or practical work in subjects like Agri. Economics. There is more emphasis on fundamental science, which does not make the student fit for his future job as Extension officer or as an employee in the departments of Agriculture or Veterinary Science and Animal Husbandry. The students are given exhaustive theoretical knowledge how to manufacture fertilizers and other chemicals, but they do not learn how to apply the fertilizers in the fields in correct amounts with actual application to the plants The students are taught the lay out system and methods of planting, in the class room, but when it comes to the question of establishing a new orchard they become new to the job. I may mention that many students do not know how to operate a desi plough with a pair of bullocks. If a few know it, they are unable to open out a straight furrow.

(6) Teaching Method :—Because of the lack of facilities, the inherent drawbacks in the curriculum or syllabus and the examination system, a lack of training to teachers and a lack of interest in the students, teachers still dictate notes or give lectures. They do not use mimeographed notes, do not prepare visual aids, do not give assignments which could be prepared from the library, because the library does not have sufficient books or is not open in off hours. Even if the teacher takes interest and is well qualified, his leadership is crippled by the Examination system, because he is nobody to emphasise on a topic. There is not much use of the discussion method and it is only a one way traffic from teacher to student. In the absence of a feed back the teacher does not know how much has been followed by his students.

Agricultural Universities :—Because of such drawbacks in the old system, Agri. Universities are being established. These universities have the following set up.

Vice chancellor:—Registrar, Comptroller, Director Student Welfare.

Dean of Agri. Colleges, Veterinary Colleges :—Director extension, Director research, Chairman for each subject or Hea[illegible] of Deptt.

Associate deans (For each college) :—Professors or I/C subjects Associate Professors Assistant Professors, teaching assistants.

Under the Director of Research these will be the state heads for each branch of research in Agri. or veterinary science. These heads will have their staff in each sub branch under the Director of Extension, There is one head of the deptt. or chairman of the subject of Extension education and rural sociology, with professor in various colleges, Asstt. professor etc. and a team of subject matter specialists at each college, who will be drawn from each subject, like Entomology, Plant Pathology, Chemistry, Agronomy, Engineering, Horticulture etc. The Veterinary colleges will have some staff who will be under the Chairman and Director of Extension.

'Tis education forms the common mind,
Just as the twig is bent, the tree's inclined.'

Alexander Pope.

'Education makes a people easy to lead, but difficult to drive; easy to govern but impossible to enslave.'

Lord Brongham.

'In every way agriculture is the first calling of mankind; it is most honest, the most useful, and consequently the noblest which be can exercise.'

Rousseau.

'The art which feeds the world is a thankless calling.' *Voltaire.*

Leadership and Planned Development

Dr. M. M. Lavania M. A. Ph. D.

[The blind, partisan and illiterate leadership of the village community, in the context of its present-day democratic Panchayati set-up, is not only blocking the paths of the present-day progress in villages, but is also dryjing up permanently the founts of iner-caste and inter community harmony, so necessary and vital for our national solidarity.
---Chief Editor]

This study is based on an intensive study of a village called Saradhana situated in District Ajmer in Rajasthan, at a distance of about fifteen kilometers from the city of Ajmer on Ajmer-Jodphpur Highway. I have called it an intensive study, because it was confined to a single village community, and then this study was carried out by me personally for about two years regularly from 1962 to 1964 and some time occasionally even after that till 1967.

A role of leadership has long been recognised by all sociologists in maintaining community morale and solidarity. In the absence of proper leadership the morale and social solidarity of a community is bound to deteriorate. The result of this village community study, proves that our village community has not been able to produce the right type of leadership for the planned development which has been going on throughout the country and on which our Govt. has spent crores and crores of rupees since the introduction of the Panchayti Raj or the so-called grass-roots democracy in India.

Caste Structure & Leadership :—

The Hindus form the main community of the village. There are 815 house-holds within the whole village out of which 17 are of the Muslims and one house-hold of a Christian. The rest of all the households belong to the Hindus. These Hindus of the village Saradhana have not yet given up their traditional caste structure and caste system. The same traditional caste gradation and hierarchy still reigns supreme within the community. I have divided this caste hierarchy into four followng categories or ranks :—

1. The First Rank :—
   The Brahmins, the Rajputs, the Mahajans (Vaishnavas) and the Jats.
2. The Second Rank :—
   The Khatis, the Sunars, the Lohars, the Malis, the Nais, the Kahars, the Darji and the Kumbars.
3. The Third Rank :—
   The Khatiks, the Naiks, the Sargaras, the Dhobis, The Dholis.
4. The Fourth Rank :—
   The Bhambis, the Regars and the Harijans (Bhangis) as they are known in the village community.

The Jats of this village are numerically as well as economically the most dominant caste within the village. Out of 706 households 260 belong to the Jats i. e. they form about 37%of the total house-holds. Numerically they form the the largest single group. They are 1197 out of the total population of 3620 or they form about 33%of the whole population Economically, most of the agricultural land in the village is possessed, owned and cultivated by this agricultural caste of the village. That is why this caste has been designated as the dominant caste of the village.

Since Indepenence especially, and during the 20th. century generally, our village communities have been under-going a rapid pace of change, as a result of the impact of

the processes of planned development, introduced by the Govt. of the country.

By the concept of the community morale is meant the functioning of the community with its traditional unity, solidarity and an espirit de corps among its members. In olden days our village communities are said to have possessed this ideal type of morale, unity and solidarity with a kind of espirit de corps. At present, as we observe it, the village community of Saradhana, has been deviating farther and farther from this ideal type of community morale. Day by day and year by year the village community has been constantly receding from this ideal, while the present fissiparous tendencies among the different castes and communities of the village have been noticed to be on the increase. Most of the development work in the village has been hampered on account of these divisive, fissiparous and antagonistic tendencies in this village community in Rajasthan.

One of the factors of this disintegrative force in the village is the unqualified shortage of the right type of leadership within the village. The traditional type of rural leadership is now being substituted by a new and emerging leadership, as a result of the introduction of the democratic pattern of Panchayati Raj in the village-India, along with the changes in the political, social, economic and ideological structures. The former traditional leadership, based on authoritarian principles and ideology has now been replaced bv the so-called democratical—elected leadership. How far has this new and emerging leadership in the rural community of Rajasthan proved itself equal to the task, has to be studied and we have to see whether the much-needed group-morale and social solidary can be adequately supplied by these new leaders. The proper type of leadership was never as much the need of the hour in village-India as it is today. According to Krech and and Crutchfield* the following are the expected functions of an authoritative or democratic leader.

"The specific functions vary somewhat with the kind of group being led. Thus, a leader functioning in an 'authoritative" group may stress certain functions, whereas a leader in a democratic group may stress others. However, whatever the nature of the group, all leaders must partake to some degree of the functions of the executive, planner, policy maker, expert, external group representative, controller of internal relationships, purveyer of rewards and punishments, arbitrator and mediator, and examplar."

Society in Rajasthan as in other parts of the country too, is passing from an authoritarian to a democratic phase. The present is the crucial period of change. The rural community in Rajasthan was feudal in character, some years back and now all of a sudden it has entered into an era of democracy, based on adult franchise. Let us now see, point by point, how far is our present rural leadership proving worthy or unworthy of the great responsibility cast recently upon its shoulders.

1. The leader as an executive :—

The flood gates of Panchayati Raj have been widely opened in the whole of India including Rajasthan. Enough executive powers have been conferred to the village leaders as Panchas, Sarpanchas and Pradhans. Thousands and thousands of rupees are

* "Theories and Problems of Social Psychology" By D. Krech and Crutchfield, Mckgraw-Hill (Asian students Edition' Page-417.)

being spent in village development activities every year through the newly established Panchayats. How far has this money been utilised will explain the true role of the leaders in the villages. in the emerging pattern of Panchayati Raj in Rajasthan.

The village Panchayat of Saradhana consists of 15 members, including the two female co-opted members, who generally never participate in the Panchayat work or its proceedings. They are members only in name. The village Panchayat is a small village government dealing with small village disputes and other village developmental works. The village Panchayat leaders are busy extending the scope of village Panchayat activities there by increasing their own hold over the village people. The decisions of the Panchayats were found to be arbitrary, whimsical, partial and based on per·onal influence. The villager comes to the Panchayat Ghar for justice, but mostly he returns from here dis-appointed and dis-satisfied.

The village Panchayat Leaders have been found to be engaged in encouraging village disputes and factions The Panchayat funds have been spent on un-economic and useless items such as water tap scheme, construction of community centre building, teachers' quarters etc. The Panchayat spent Rs. 15000/- on water supply scheme, which has failed altogether.

2. Village Leader as a Planner and Policy-maker :—

The functions of a village leader are multifarious. He has to plan various schemes and frame policies for the all-round development of the Community. Looking to the great responsibility cast on these elected rural people and the plans and policies framed by them, it becomes clear that they lack proper training, back-ground and mature judgment in their day-to-day work. The dominant caste is openly partial towards their own kith and kin. There is no coordination and integration in their schemes of development within the village. Though the V. L. W. is a Govt. employee, yet he has to dance at the tune of the village sarpanch, otherwise he is harrassed in many ways. Now the V. L. W. has to act as the Panchayat Secretary also. Therefore, the V. L. W. and the Sarpanch have becme hand and glove in almost all village planning and development work. Thus the aim of reforming the village Panchayat System by transferring the secretariship of the Village Panchayat to the V. L. W., has failed to get the desired result or object

One of the members of this village Panchayat is an educated person. Through his personal influence and educational qualification, inspite of his being a member of the minority Muslim community, he often carries out his own decisions, but often he is disgusted with the illiterate Jat majority in the Panchayat. Except this educated Muslim member all other members are almost illiterate, conservative and traditional in out-look. It was due to the dashing leadership of this single member that a maternity home was opened and established, inspite of much opposition from the villagers and other members of the village Panchayat.

3. Village Leaders as Experts :—

Every group or community looks for guidance from some trusted leader. The Sarpanch, up-Sarpanch, Panchas, V. L. W., Patwari, Lambardar or a Teacher are the non-official or official leaders of the Village. Every village seeks guidance and advice from these people. It has been fully realised that the training and experience of the V. L. W. has not been fully exploited,

राजस्थान के कृषि मंत्री श्री शोभा राम जी

कॉलेज के वार्षिकोत्वस पर विद्यार्थियों को आशीर्वाद देते हुए

श्री शोभाराम जी

कॉलेज के नवीन पुस्तकालय-कक्ष में

कैडेट कैप्टन अनिल खन्ना
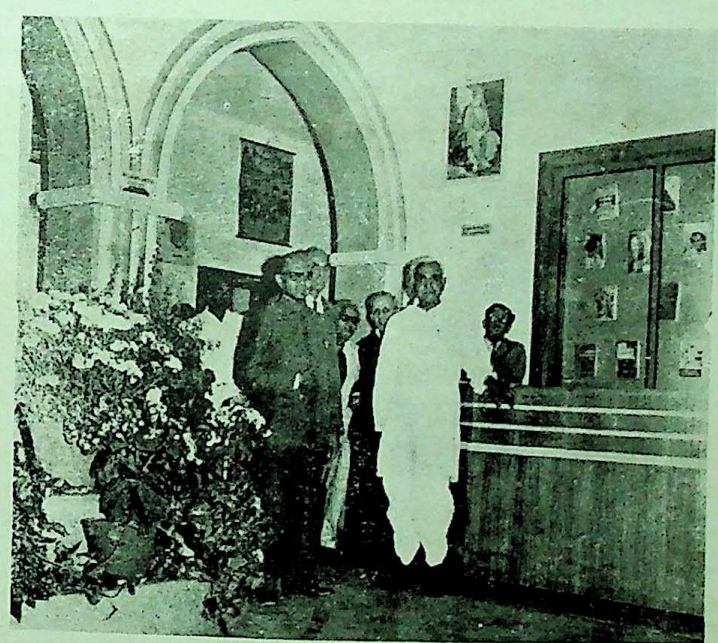
जिसने दिल्ली गणतंत्र परेड का संचालन किया
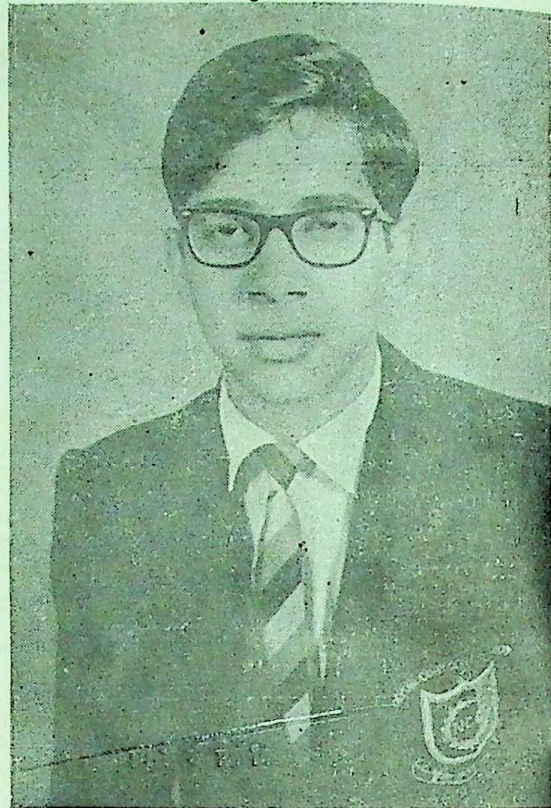
कैडेट कैप्टन अनिल नाग, द्वितीय वर्ष विज्ञान

जिसने दिल्ली की गणतंत्र दिवस की १९६८ की परेड में राजस्थान का प्रतिनिधित्व किया

P. O./C. रोहिताश चड्ढा, द्वितीय वर्ष विज्ञान

जिसने दिल्ली की गणतंत्र दिवस की १९६८ की परेड में राजस्थान का प्रतिनिधित्व किया

S/UO गोपीलाल यादव VI Coy

१९६७-६८ के सर्वश्रेष्ठ कैडेट

as he generally becomes a puppet in the hands of a dominant caste group and thus fails to exercise his own discretion and judgment. The V. L. W. is now over-worked.

Party factions have been increasing in the village. Those who belong to the opposite group of the Sarpanch or Up-Sarpanch never cooperate with the Panchayat. The Sarpanch is an un-educated Jat. No body believes him to have possessed any special knowledge or being an expert in any thing connected with the development work.

4. Leader as an external group representative :–

In all matters-official and non-official, if the village has to be represented in any meeting, committee on conference, it has to be represented by the Sarpanch or the Up-sarpanch. The Surpanch and the Up-sarpanch (now in 1967) are not at all educated or liberal in anysense Consequently the village has not been able to draw its proper share from the financial pool at the Block or district level. Narrow grooves of Casteism, conservatism, selfishness, partiality, favouritism and bribery, hamper the career of the present day rural leadership.

5. Leader as a Controller of Internal Relationship:

As these members have been elected on adult franchise they were expected to help in maintaining smooth internal relations among different castes, gotras, sub-gotras and between different communities. Instead they have accentuated the intra-and inter-group rivalry, groupism, caste segregation, favouritism, and total disharmony within the village. In the opinion of some of the villagers their role has been considered dirty, nefarious and corrupt.

6. Rural Leaders as Arbitrators and Mediators:–

The role of the leader is much needed at the time of inter-caste conflicts and dissensions, which are commom features in a changing rural society. When the cases under dispute are brought bofore the Panchayat meeting and if the case does not involve any of the Jat Panchas, then the decision shall be impartial, but if per chance the case is concerning any Jat of the Village, who in turn is related to the Sarpanch or any other punch, the decision is bound to be partial. In such case the judgments of the Panchayat members are said to be partial, corrupt or arbitrary.

7. The Village leaders as examplars & Ideologists :—

A leader is leader by virtue of his examplary character and behavior. But the Panchas of Saradhana have not been able to establish their leadership on this score too. A true leader inspires and stimulates others by his words as well as by his deeds. The Patwari and the V. L. W., the two officials leaders within the village, have not proved their worth. The democratically and unanimously elected members of the village Panchayat have not been able to lead as ideal and stimulating persons in the village. Neither have they got the requisite ability, nor have they been able to make any personal sacrifice for the good of the villagers. They are all selfish persons doing good only to themselves and to none else. Though the former Up-Sarpanch was a member from a minority community, yet he commanded respect and obedience from the villagers by sheer dint of his ability, integrity, honesty and sacrificing nature. He was a retired teacher-cum-clerk Govt. employee devoting most of his time now in the Panchayat. But the rest of the members are quite un-inspiring and selfish persons.

Thus the newly emerging leadership has not been able to stand on its own strength. Their leadership is not based on the popular will and consensus. They are leaders, because they are the richest persons of a majority janta strengthening and prolonging itself on the perpetual basis of a dominant caste. ●●

Agriculture Cum Food Problem in India

A. K. Rajpal

[As we all know so well, science alone can solve the tremendous problem of feeding the ever increasing numebers of our untold millions, provided, of course, we have the will and the ability to make use of this modern Aladdin's lamp. --Chief Editor]

How often in the history of mankind man has gone forward into the unknown with a tiny taper, to greet the dawn, only to discover a little too late that he has blundered into the land of perpetual Night. But it is really surprising to assume so in the history of the inhabitants of this country, which, no doubt, is passing through the darkest period of its life. Nobody can deny the fact that the nation needs upliftment, improvement and development in social, economic, political and cultural fields But a nation is not built on empty stomachs and paths are not illumined by those who themselves are engulfed in the clouds of want and denial. When a hungry man cannot help himself, how can his distracted attention, towards the building of the nation, be criticized It becomes necessary for a driver to pay considerable attention towards the fuel of the engine, if he wants the latter to drag the waggons to their destination. Similarly a man, being no more than an organic engine, requires food to enable him to execute his duties towards himself, his family, the society and the nation.

India is a big and densely populated country. Indeed, the problem of supplying food for such a big nation is very gigantic and well planned organization is needed to to execute the above task, but then, it does not mean that we should be disappointed and turn our eyes either towards God or other rich and sufficient countries of the world for help. If anation adopts this policy and goes on receiving things, it becomes parasitic and sinks into degenerate existence. What we have to do is to study the problems obstructing our way to self reliance and find out solutions for them.

We see in daily life that many people do not get even two meals a day. A large majority of the population is undernourished and impoverished, and so our food problem require not only the supplying of enough food to the people to satisfy their hunger but also providing them with a balanced diet. The rising food prices, the imposition of restrictions on the movement of food grains, opening of the cheap food grain shops, are all indications of the fact that the food problem is very grave. Why all this when India lives in her villages and the main occupation of the villagers is agriculture. ? The conspicuous cause seems to be the most primitive method of farming They cultivate their small fields with their ancestral ploughs and bullocks and employ old methods of cultivativation which make the yield per acre very low. Another reason is lack of irrigation facilities which are so inadequate. Moreover the monsoon climate itself makes agriculture a gamble in rains. Rain falls only in a particular part of the year and remains uncertain in time and quantity. Sometimes we get heavy rainfall which destroys the standing crop and. at other times rains do not come in time and cause famines as we have lately witnessed in Bihar. The other thing missing is the improved quality of seeds and timely help to every Indian peasant. The last but not an unimportant factor is that wastelands are quite overlooked by both Indian peasants and government. All these, in short, are the leading causes of our agriculture inferiority.

Now let us pass on to the ways of finding solutions and improvements in the above sphere. Every thing is remediable, if subjected to careful attention and close examination. India is a land of plenty as well as of sheer want, of landed artistocracy and landed poverty—what is needed is a thorough change in the system of farming. Progress in agriculture is closely linked up with progress in irrigation and hence it is of vital importance for our agriculture that more intensive programmes of canal irrigation are made, as they increase the fertility of the soil because this system of irrigation provides various salts and minerals dissolved in it. It also relieves the farmer of his dependence on rains and thus he ensures agriculture against scanty rains.

But improvements in the above matters are not sufficient to improve our agriculture. More important things are modernization, mechanization, and use of scientific researches in the very methods of agriculture. Science is the means through w ich a whole society adapts itself to the future : the process of adaptation is a conscious, deliberate and planned process because it involves some kind of an anticipation of the future and aims at its control. Improved means of irrigation, new machines like tractors, chemical fertilizers, disease resistent variety of seed, are some of its contributions to agriculture and they should be adopted by our peasants. There is no denying the fact that our government has established scientific research laboratories with the aid of either Russia or the United States and has also made effort for the increase in yield of the erable land. But the thing to be lamented is that all the above achievements are superficial, in the sense that they are not being implemented. Theoretical approach is quite different from practical approach—the approach which is likely to change the whole outlook of our agriculture. Not only this, we should also be able to tackle our storage problem scientifically. There should be some scientific method of wheat preservation so that it may not be spoilt or lessened in quantity by birds, insects, mice etc. Insecticide should also be given as much importance as is given to the increase in yield but that process of using insecticide should not affect the quality of our grain. Thus we see that these miracles of science, which like poetry of the earth, are never dead, should be taken into consideration and made well deserved use of.

Even after the use of scientific methods we cannot consolidate one rule in agricultural domain. There remains something else also which needs strict attention. We cannot tolerate fragmentation or subfragmentation of land any more; the deliverance of our peasants and soil toilers lies in their joint-co-operative effort to reap a golden harvest. The joint-co-operative system of farming is essentially a most potentially useful boon for the Indian peasants, particularly after the abolition of the zamindari system. Let all efforts be made in the right spirit to make co-operative farming a success.

Now the last, but not the least, point to be considered is, whether we can, as expressed before, end our food problem once for all, by making all the above improvements in the agricultural field. If I were to reply, I would certainly answer this question in the negative. Because the growth in population is another such factor as can never let us go near self-reliance. Though certain immediate solutions have been traced out for self-sufficiency viz., our late Prime-Minister Mr. Shastri introduced the process of self imposed limitations by fasting on Mondays and also the all India Woman Federation has tried to bring about a change in our food habits by

categorising food into cereal and noncereal diet, yet we can never hit ourtarget, for we are doubling in every forty years and the more mouths are born, the more deteriorates the food problem. Therefore the immediate necessity is to apply breaks to the increase in mouths to be fed. To a certain extent industrialization can help us in this field. It will open new ways to the recreations, mental and sexual satisfactions of our farmers, who, now, have no other source of recreation than the latter. The gulf between rural and urban areas has got to be abridged by supplying to our peasants the necessary assistance through industrialization, which will also help the farmers to widen their intellects by bringing them into contact with other professions and people engaged in them.

Thus, after having a survey of Indian agriculture and food problem, we can come to a unanimous conclusion that the wants of the people can be reduced and denials obliterated by proceeding in a systematically organised manner and consequently, an Indian, at least, will never find himself in the land of perpetual darkness but in the land of perpetual light illuminating every corner of the country. ●●

"All taxes must, at last, fall upon agriculture."

—Edward Gibbon.

"Produce ! Produce ! Were it but the pitifullest infinitesimal fraction of a product, Produce it in God's name ! 'Tis the utmost thou hast in thee. Out with it."

—Thomas Carlyle

"Who doth ambition shun
And loves to live in the sun,
Seeking the food he eats
And pleased with what he gets."

—Shakespeare—As You Like It.

At the Frontiers of Science and Medicine 1967

A. P. Bais

[Not keeping abreast with the most recent developments in this fast-moving world of science, would mean a perilous existence, where you are likely to run against dangerous forces, quite unawares.

-Chief Editor]

COSMOLOGY AND ASTRONOMY

The Origin of the Moon

Early in the year, a University of Miami scientist, Siegfried Singer, put forward a new theory about the origin of the moon. The moon theories fall into three catagories: the moon was torn from the side of the earth by a passing star, the earth and the moon originated simultaneously from the same primordial dust as neighbours, the moon was an independent planet of the sun which was captured by the earth while it was passing near. To the last of these theories Singer has given a new twist, overcoming many of the experts' objections to the older theory.

According to Singer, when the earth captured the moon from the latter's solar orbit as they passed near each other, the moon got a highly eccentric orbit around the earth, being only about ten thousand miles away at its point of closest approach and hundreds of thousands of miles when it was farthest away.

Being of comparable sizes, the gravitational effects of each other began to work. When the moon came near, it pulled out quite a big hump on the side of the earth facing it. At that time the moon was moving much faster past the earth than the earth's own speed of rotation, which Singer estimates at that time to have been only five hours. Then as the moon went off to its farthest point from the earth, its speed became much less than that of the earth's rotation. This is in accordance with the known laws of gravitational motion. Thus while the moon was rushing past when near to the earth, the bulge on the latter tended to slow the moon and when it was sluggishly sailing when farthest away, this same bulge tended to pull it faster. The net effect of this over thousands of years would be to pull the moon into a less eccentric orbit until it acquired a near-circular orbit at a distance of about 10,000 miles from the earth In this way Singer's theory explains the present circular orbit of the once-captured moon.

It also explains the formation of the earth's atmosphere. When it captured the moon, the earth was, according to Singer, an atmospherless orb. As the moon came near in its eccentric initial orbit, its gravitational pull became so great that the friction from the resulting tides caused much heating of the surface layers of the earth, causing volcanic activity and removal of gases from the rocks. The original atmosphere is likely to have consisted of water vapour, carbon dioxide and nitrogen. This would give the earth an atmosphere much earlier than is now believed to be the case. This would also result in a much earlier evolution of life.

The third thing the new theory explains is the pockmarked surface of the moon. As the moon approached the earth in its highly eccentric orbit, chunks of the surface were ripped up by the earth's gravitational pull. But as the moon went farther away, the attraction waned and the pieces were

pulled back on the moon, causing the craters.

The slowing down of the moon in its orbit and the lengthening of the earth's days, would, however, continue due to their mutual attraction, and the moon would slowly go farther and farther. This has been happening and the moon now is at a distance of 239,000 miles compared to the initial 10,000 miles of the circular orbit. Even now, the moon is calculated to be receding about one inch every year and our day lengthening by 0.0018 seconds every century.

When man lands on the moon around 1970, as the U. S. plans to do, further confirmation of the theory may be obtained if intense heating and volcanic activity on the moon are found to have occurred at about the same time as they did on the earth, about four billion years ago.

Nature of the Moon's Surface

The American moon probe Surveyor 5 has sent data about the nature of the moon's surface. According to this the moon's rocks have the same composition as those on the earth; the basaltic rocks forming the ocean floors in widely separated areas. The composition is 58 per cent oxygen, 18.8 per cent silicon, 6.5 per cent sliminium, 5.5 per cent iron-nickel and 3 per cent magnesium with a trace of carbon. The basaltic nature of the floor of the 'Sea of Tranquillity' indicates one-time lava flow and suggests a hot interior. It also suggests a common origin of the earth and the moon from pimordial preplanetary dust.

The Hesitant Sunrise on Mercury

How would the motion of the sun across the sky appear to an observer on the planet mercury,? A 23 year old astronomy student at Cornell University tells us in the March issue of **Sky and Telescope.** Mercury's one year is as long as our 88 days and its one day equal to our 59 days. The orbit of Mercury around the sun is, however, eccentric, taking the planet 28.7 million miles at nearest approach and 43.6 million miles when farthest. According to the rules of gravitational motion, the angular speed of this orbital motion would be much faster when the planet is near the sun than when it is at its farthest point. The speed would in fact go on increasing as the planet approached the nearest point and would slow down as it began to recede. This would result in a peculiar effect on the apparent motion of the sun in the Mercurian sky. The sun would appear to slow down, come to a standstill, go back a little towards the east, stop, and then go ahead as usual. If this happened around sunrise, the sun would rise half way up the horizon, sink back and then rise again as usual. To see this phenomenon, however, you must be prepared to stand the temperature of 790 degrees Fahrenheit (much more than molten lead) !

New Facts about Venus.

By the end of October this year, it was possible to piece together quite a lot of information about Venus from data supplied by Russia's Venus 4 and U. S. 's Mariner 5 spacecrafts. Venusian sunrise and sunset are 59 earth days apart. The surface temperature is estimated to be 536° F. Thus any human observers would have to be insulated and refrigerated against it. When high in the sky, the sun would apear as a familiar enough disk. But as it started to set, the disc would gradually diffuse itself around the entire horizon and remain as a glowing band for the remainder of the night. This would be because Venus's atmosphere is so dense that it would continue to reflect some of the sunlight all the time. The next

morning, some two earth-months later, the band would gather itself into a disk and rise in the sky.

Another curious effect of the dense atmosphere would be that if one looked at the horizon through a powerful enough telescope, one would see the back of one's own head on account of light having been bent right round the planet. Also, everywhere one went, one would appear to be at the bottom of a bowl looking up at the horizon as the bowl's edge. The atmosphere of Venus may be regarded as anything from seven to 22 times as dense as our atmospere (Venus 4 gave lower figures than Mariner 5) The Russians reported no magnetic field, the Americans a slight one, less than 1/300 that of the earth. The Russian estimate of carbon dioxide was 90-95%, American 72-87%. Mariner found no oxygen, Venus 4 found 0.4%. It also found 1.6% water vapour. The Russians found no nitrogen, though their instruments could not have detected amounts below 7%. (The earth's atmosphere contains 78% nitrogen, 21% oxygen, 0.03% carbon dioxide and about 1% moisture). The Mariner also found that Venus emits a faint ultraviolet glow and showed the exact distance between Venus and the earth to be 49,563,222 miles at that time.

Possible Life on Venus

Although the surface of Venus is too hot to bear any earth like life, its atmosphere higher up has the necessary carbon dioxide, water and sunshine. So two scientists, Astronomer and Exobiologist Carl Sagan and Biophysicist Harold Morowitz speculate about an unusual kind of flaoting life there. Originally, the scientists claim, the atmosphere on Venus was not so thick and life must have evolved on the planet as on earth. Later, due to a lot of volcanic activity the atmosphere thickened and the more buoyant forms could have taken to the air. They must have hydrogen-filled gas bags (filled with the gas manufactured by themselves biologically from water) to keep them permanently afloat between the searing heat below and the freezing cold above. The scientists estimate the size of these organisms from the size of a pingpong ball up.

THE PHYSICAL SCIENCES

Navigating with a Gem.

According to ancient sagas in Scandinavia, a magical "sun stone" enabled the ancients to locate the sun even in an overcast sky. In a recent article in the archaeological magazine **Skalk** Danish Archaeologist Thorkild Ramskan wrote about this and expressed his lament that the ancients had given no details by which the stones could be identified. The ten-year-old son of Chief Navigator Jorgen Jensen of the Scandinavian Airlines System (SAS) was reminded by this article of the twilight compass used by his father on flights in high latitudes where the magnetic compass is useless. The twilight compass uses a polaroid filter with which the position of the sun can be located even when it is hidden behind the clouds. The atmoshphere polarizes sunlight, giving it directional properties, causing the polaroid to transmit light in certain direction only. Jensen informed Archaeologist Ramskau of this. Ramskau, with the help of Dennmark's court jeweller searched amongst the minerals of Scandinavia and discovered the transparent mineral cordierite which turned from yellow to dark blue when turned in a certain direction with respect to the position of the sun. In a test on a SAS flight to Greenland navigated by Jemsen, Ramskau could locate the sun within $2\frac{1}{2}°$ even after the sun was 7° below the horizon. Thus the secret of the Viking sailors was radiscovered.

Rocket-Powered Flight Speed Record.

The X-15 achievcd a new speed record of 4,200 m. p. h. or 6.3 times the speed of sound (Mach 6.3) By 1969 it was scheduled to reach Mach 8 with a special engine and special coatings on the nose which would melt off due to the blistering heat, protecting the nose itself.

Milking Fog for Water.

Every evening dense fogs move inland from the Pacific into Chile and yet, some of the world's most arid areas lie in northern Chile. Scientists at the Northern University of Chile in Antofagasta have discovered a unique way of capturing the moisture from the fog. They constructed wood and metal frames and strung them with vertical strands of nylon and set them up on nearby hills. Drawn by the evening winds, the fog formed water droplets on the strands and the droplets collected into receptacles, quickly filling them. Eventually the Chilean scientists expect to be able to supply water sufficient for a medium sized city This method is now being tried in New Jercy for dispersal of a troublesome fog frequently hanging over New Jercy towns.

Telefactoring-A New Technology.

Sitting in what looks like a driver's cabin in a truck or locomotive, a man will be able to operate identical controls in a part of a room and corresponding controls in the actual truck or locomotive would automatically move and maneouvre the vehicles as far away as across a continent. This is a consequence of combining today's miniaturization in elecronics with wide-band communications. The 'driver' would feel exactly as though he was handling the truck or locomotive and would see outside the distant vehicle as he would have seen if he were there, but would be safe from any risks. Spaceships could also be made to operate in this way as well as grounded vehicles and probes on distant planets from either an orbiting ship or from earth. And future wars could be fought by mechanical fighters and fighting craft from safe bunkers far away from the scene of battle. Casualties would be in machines and not in men. Details of this technology were spelled out by Electrical Engineer William Brudley before the American Institute of Aeronautics and Astronautics in February last.

Space and Space-Technology.

The most spectacular space achievement of the year again went to Russia's credit—a soft landing on Venus. Russia's 2,427-lb. Venus 4 spacecraft, after a lonely four-month journey, ejected an egg-shaped capsule crammed with instruments into Venus' thick atmosphere. At an altitude of about 15 miles, when the Venus' "air" had sufficiently slowed down the capsule, a parachute opened and the capsule slowly drifted down, noting the composition of the Venusian air and reporting it back to the earth. The findings have already been noted above in the Cosmology and Astronomy section.

America also sent up its Mariner 5, a 540-lb. craft, approached, at about the same time, only within 2,480 miles of the Venusian surface, briefly disappeared behind the planet (as seen from the earth) and then headed toward a permanent orbit around the sun. In this brief approach the craft could collect and then liesurely send back almost as much information about the Venusian atmosphere as Venus 4. The details of the information are given also in the Cosmology and Astronomy section above.

Another Russian achievement soon after the Venus landing was the docking and undocking in space of two unmanned satellites automatically with the help of

computers. The spacecrafts were then brought safely back to earth in soft-landings. This could have been in preparation for a future manned moon mission from an orbitting earth statellite, as the Russians do not yet have powerful rockets like the U. S. 's Saturn 5.

The Americans the very next week successfully placed a 140-ton payload into orbit with the help of the Saturn 5 rocket, thus surpassing Russia in sheer payload lofting capcity for the first time in a ten-year competition. The Russian record was 13 tons in 1965. The Apollo service module, after being separated from the final engine, was brought back to earth at 25,000 m. p. h. with the help of its engine. This is the speed at which a mission returning from the moon would approach in a similar vehicle. This was an important step in the American programme to land man on the moon and bring him back by 1970.

THE BIOLOGICAL SCIENCES

Towards Synthetic Life.

A definite step towards the creation of life in the laboratory was successfully completed by the year end by two biochemists at Stanford University and a biochemist at the California Institute of Technology. The Stanford team of Nobel Laureate Arthur Kornberg and Biochemist Mehran Goulian started with two chemical compounds called nucleotides from the laboratory shelf, which are the basic building blocks of the DNA molecule, which controlls the hereditary characteristics of all living things. To this they added another chemical substance, the enzyme DNA polymerase, which triggers the assembly of nucleotides into typical helix-shaped strands of the DNA molecule. And they also added another enzyme which closes the strands into rings. So far they were dealing with inert chemicals only. Now they took natural DNA from a simple virus called Phi X 174. This consists of a single DNA molecule surrounded by a protein covering. They added this DNA to the brew they had prepared. This DNA acted as a pattern or template for synthecising a DNA strand similar to the one added from the nucleotide with the help of the enzyme DNA polymerase. The strand grew to the size of about 6,000 nucleotide units which was a mirror image of the corresponding strand in the natural molecule. From this synthecised strand as a template, they produced a synthetic duplicate of the natural DNA molecule.

So far, the scientists had only repeated a previous feat, but with infinite care to have the polymerase of absolute purity, as previous attempts had resulted in broken strands. Now they separated the synthetic DNA molecule from the natural ones and sent the frozen sample to their third accomplice, Biophsicist Robert Sinsheimer at the California Institute of Technology, to test its biological activity.

Sinsheimer placed the synthetic DNA molecules along with Phi X's natural victim, E. Coli bacteria which are common microbes of the intestine. The DNA molecules attacked them in the manner of natural Phi X DNA by directing them to produce hundreds of Phi X viruses, each with its protein coating. The viruses soon caused the rupture of the bacterial cells. Thus the experiment was quite successful, unlike the previous attempt with broken strands of DNA. The progeny of the synthetic DNA molecules thus produced from the bacterial material were indistinguishable from natural Phi X viruses.

Micro-organisms Thriving in Ammonia.

When life began on this planet earth, the atmosphere was quite different from the present one, say the experts. At that time there was hardly any oxygen and a lot of the obnoxious smelling ammonia. Now, it so happens that the present-day plants and animals cannot live in such an atmosphere. However, this year U.S. Physiolologist Sanford Siegel found in Wales, England, on a wallside spot in a well-urinated open-air place a micro-organiam that lived on the ammonia formed by decomposing urine. This may well have been the living descendent of a recently discovered microfossil which is two billion years old. Jupiter's present atmosphere also consists of ammonia and methane and man may well find such micro-organisms there when he lands on that planet some day.

Nobel Laureates in Science.

Physics. Hans Albrecht Bethe for his discoveries during the 1930s about the way the stars (including the sun) produced their tremendous amounts of energy over such a long period of time. He found the process to the similar to that in the fusion energy of the hydrogen bomb, viz. by the combining of four hydrogen nuclei into a helium nucleus, but by a circuitous process.

Chemistry. Shared by (1) German Chemist Manfred Eigen, (2) British Chemist G W. Norish; and (3) British Chemist George Porter. Eigen got half the prize and the other half was shared by the two British chemists. Their award winning work involved the study of rapid chemical reactions lasting only one billionth of a second.

MEDICINE & HEALTH

The Artifical Patient.

Sim (for 'simulator') One is a fibre-glass-and-steel robot which is life-size with a skin which feels like human skin, a chest which moves as in breathing, eyes which dilate, muscles which twitch and a mouth which opens and closes. It has a tongue, vocal cords and an oesophagal opening. Sim one is developed by Dr. Stephen Abrahamson and Dr. J. S. Denton at the University of Southern California School of Medicine and Aerojet General's Von Carman Centre for training anaesthesiologists in the difficult technique of endotracheal intubation, which involves slipping a tube into the patient's windpipe and administering anaesthetic gases through the tube directly into the lungs. This is the usual practice in major surgery and students took as mush as three months to learn it. With Sim One they can learn it in only a couple of days. When the students make mistakes, Sim One vomits, suffers heart attack, goes into shock, and reacts in other ways to drugs. If the procedure is correctly followed, Sim One opens its eyes and blinks at the end of the operation; if major mistakes are made Sim One 'dies'. Other such robots for other training are planned.

Cardiolgy.

The outstandiug cardiological event of the year was the successful transplant of a human heart from one person to another. Although skilled surgeons on both sides of the Atlantic were for some time ready for the feat the actual honour of being the first went by a narrow margin to Surgeon Christian Barnard at Cape Town, South Africa. The patient was a 55-year-old grocer who had suffered two heart attacks during the past seven years, had diabetes and clogged coronary arteries. The donor happened to be a 25-year-old girl, the victim of a car accident. The operation was a success in that the patient lived for several days and ultimately died of an infection which had no connection with the transplanted heart. However, the death could have

been due to the patient's lowered resistance to all germs due to the drugs given to him so that his system may not reject the 'foreign' heart. The second tranaplant performed on a small child in the U. S. did not succeed.

The relation between personality and heart disease was underlined in the case of a heart specialist who got a heart attack. The victim was no other then 66-year-old Dr. Irvine H. Page, research director emeritus at the Cleveland Clinic, one-time president of the American Heart Association and until 1966 research director of the Cleveland Clinic Researching since 1930 on the causes and treatment of high blood pressure he had no cause to worry as his own pressure was 128/78 early in 1967. He was also a model of slimness, weighing 146 pounds for a height of 5-ft 10½ in. His diet approximated to that used in his own Diet-Heart study. He was a moderate social drinker and smoked hardly half a pack a day. He also maintained a reasonable level of exercise. What, then, was wrong with him to get the attack he got ? He himself explained last October at the Annual Meeting of the American Heart Association at San Fransisco. It was neither overwork nor stress, as commonly understood, that laid Dr. Page low. It was the drive and competitiveness that compels some to take on more tasks than they should. "I worked hard.. I was continually dissatisfied. I took up to ten cups of coffee a day, trying to squeeze the last bit of efficiency out of myself", Dr Page said Now Dr. Page has reformed. He jogs in place beside his bed each morning and walks to every place, and gives more importance to the "emritus" in his designation.

Immortality by Freezing

A physics teacher at a junior college in the U .S., Robert Ettinger, wrote a book entitled **The Prospect of Immortality**. This induced a psychology professor, James H. Bedford, retired and dying of cancer, to arrange for his body to be preserved by freezing for later revival, if possible, after a cure for cancer had been found. He had left $4,200 for a steel capsule and for liquid nitrogen to keep his body frozen at about 200° below zero centigrade. So when Bedford died on January 12 this year (1967) his physician Dr. B. Renault Able and members of the Cryogenic Society fo California packed the body in ice, using artificial respiration and external heart massage so that the brain may not be affected by damage due to loss of oxygen until it was frozen. They also drained out the blood and replaced it with a non-freezing solution. The body was then flown to Phoenix where the capsule was ready waiting. In it his body was stored in liquid nitrogen. According to our present knowledge, the body has no chance of reviving on thawing the nitrogen. It is only simple organisms like bacteria which can thus be preserved. In the higher animals the damage done during the process of freezing is so much that no revival is possible.

Towards Painless Childbirth.

One of the severest pain, one half of mankind must be prepared to bear is that of childbirth. And yet it is a most natural process and one feels the pain should be avoidable, at least to a considerable extent. One new attempt to soften this plan was devised in the mid-1950s by 61-year-old Professor Heynes of the Universijy of Witwatersrand in Johannesberg, South Africa. His device causes a reduction of pressure over the woman's abdomen during childbirth by a sucking action in a sphere surrounding the abdomen. This year a much improved version of the decompressor has been put into use at the D ecompression Clinic in Kaightsbridge, London. There the dcompression

technidue will be practised not only during actul childbirth. but also in earlier pregnancy when it is found to have a beneficial effect on the development of the child.

How Safe Are the A. P. C. s.

There have always been some individuals who are against the common practice amongst most of us of taking aspirin tablets for the slightest headache or any other pain. What is the present medical opinion on this point ? According to reports from medical centres in Europe those who take large doses over a number of years of tablets containing phenacitin (the ingredient denoted by 'P' in A. P. C.) suffer kidney damage, and some have died of it. Additional British evidence published in the Journals **Lancet** and the **British Medical Journal** indicates that doctors and habitual A. P. C. users who prescribe or take more than ten to twelve five-grain tablets a day should be on the lookout for effects such as stomach bleeding or anemia.

The Oldest Men ?

How old has the oldest man been ? Several claims are made from to time. Thus, early in June this year a Charley Smith in the state of Florida in the U. S. celebrated what he claimed to have been his 125th birthday. A Russian farmer Shirali Muslimov claims to be 161 or more. The trouble with these claiments is that there are no authentic pieces ef evidence to supprt them. So far as clear records are available, it appears that the record of longevity is about 110 years.

The Nobel Laureates.

This year's award in medicine was divided amongst three scientists, two Americans and a Swede : George Wald, 60, and Halden Keffer Hartline, 63, and R. Granit, 67. Their researches concerned the eye and vision. Wald worked on the discovery and working of Vitamin A with respect to colour perception. Hartline studied the nerve impulses which went out in the form of electric currents when light struck the receptive cells in the retina Granit also worked on colour perception from the point of view of the nerve cells. Biologist Wald is a lecturer at Harvard University; and Electrophysiologists Hartline and Granit are, respectively, professor at New York's Rockefeller Utiversity an a visiting professor at Oxford, England. Granit was formerly professor of neurophysiology at the Royal Caroline Instiute. ●●

"The highest wisdom has but one science—the science of the whole—the science explaining the whole creation, and man's place in it."

Leo Tolstoy—War and Peace.

"Wonders are many, and none is more wonderful than man."

—Sophocles.

कॉलेज के तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कार्यकर्त्ता बीर में गोष्ठी पर

कॉलेज के प्राध्यापकगण और छात्र जिनके बीच हॉकी मैच हुआ

कॉलेज के सामाजिक सप्ताह में
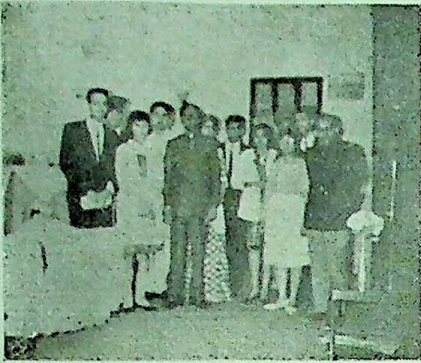
अभिनीत अंग्रेज़ी नाटक के अभिनयकर्त्ता
आचार्य द० वाब्ले के साथ

श्रीकृष्ण शर्मा, तृतीय वर्ष विज्ञान
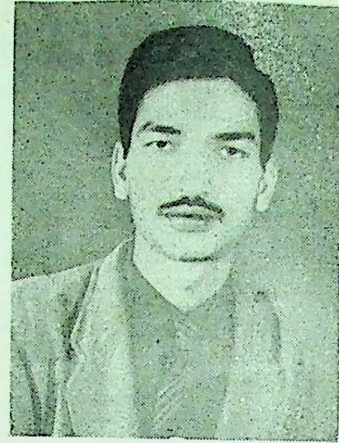
मन्त्री, छात्र संघ

प्रवीनचन्द भँवर, द्वितीय वर्ष वाणिज्य

युनिवर्सिटी भारोत्तलन प्रतियोगिता में द्वितीय

शिवचन्द राम यादव, प्रथम वर्ष कला

युनिवर्सिटी एथेलेटिक प्रतियोगिता में उछल कदम कूद तथा
लम्बी कूद में प्रथम तथा द्वितीय स्थान प्राप्त किया
कॉलेज खेल कूद प्रतियोगिता में व्यक्तिगत योग्यता प्राप्त की

Potash In Agriculture

Gyaneshwar More (Ex-student, IPSA'S Agronomist for Rajasthan)

[The secrets of plant or animal nutrition being gradually unfolded by science, are bound to bring about an unprecedented boom in plant or animal food production one day.
-Chief Editor]

The answer to country's food deficit is intensive farming through the use of high-yielding varieties of seeds, proper pesticidal and cultural practices and complete and balanced NPK fertilizers. Results of a large number of experiments have shown that in balanced fertilization POTASH has an essential role.

WHAT IS POTASH ?

The term potash when used in connection with fertilizers refers to Potassium Oxide written chemically K_2O. The element Potassium (K) is what the plant uses. In natural and chemical compound it is found with other elements. When combined with Chlorine (Cl) for example, it forms potassium Chloride (KCl) called Muriate of potash. Due to custom of many years and in accordance with the respective laws, the potash content of the fertilizers is given in terms of K_2O even though there is no K_2O in the materials as such. When the chemist analyses the fertilizer, he finds out how much K is present and represents this amount in the equivalent amount of K_2O.

The word "Potash" is derieved from an old method of extractiog Potassium Carbonate (K_2Co_3) from wood ashes. Ash was dissolved in water and the liquor was evaporated in Iron pots and allowed to solidify in wooden vessels, hence the word POTASH.

While the tillers of the soil, almost from time immemorial, unconsciously had been using Potash in the form of wood ashes, it was only in 1840 that the necessity and importance of Potash for the growth of plants was established by the chemist Liebig. In ancient times, farmers in clearing the land of forests frequently burnt the trees and thus had considerable quantities of wood ashes. These ashes were applied to the soil by them since they observed good effects from their use, a practice which is still followed in areas where "Shifting cultivatiou" is in vogue. The work of Liebig showed that the beneficial effect of the ashes was due in part to the Potash they contained. As long as there was no pressure on the land, many soils were able to produce satisfactory crops. When the soils, bacame worn out, there were large areas of other soils that could be used and consequently there was no need of fertilization to maintain the fertility of the soil. This method of cultivation is since long, a thing of the past.

For an evergrowing population which has to be fed, depletion of soil fertility due to continuous cropping reduces supplies of wood ashes and new knowledge explaining the necessity of Potash for plant growth, all combined to create interest in Potash.

The first discovery of large potash deposits occured in Germany in 1851. Further deposits have been discovered since, in other continents also, but not so far in India.

ORIGIN OF POTASH FERTILIZERS :

In nature, potash is present in the crystals of many minerals. Under the forces of weathering, the potassium is liberated from

its crystalline bonds and is free to move with the water through streams and rivers to the oceans, where it forms part of sea water's salt content.

It is assumed that potash deposits are lands of marine origin. In ancient geological times, parts of the present day world were supposed to be occupied by oceans, of which a large area evaporated leaving salt deposits containing potash in certain layers. These were buried by more recent geological formulations. Tectonic forces in many places pressed them upwards again and the younger geological cover was weathered and eroded, so that the potash deposits can now be mined at attainable depths of 1,200 to 3,000 feet. It should be emphasised here that potash fertilizers are a perfect natural product obtained from reserves of one of the principal elements. Potash can also be extracted from the liquor from salt lakes or from bittern, a waste material from the salt lakes. Production from such sources, however, is relatively costlier compared to the exploitation of Potash deposits by mining.

POTASH IN PLANT NUTRITION :—

Potash is necessary in the life processes of plants and animals. There would be no life without it. Crops grow poor when potash is supplied to them in very small quantities, yet it has never been found as a part of the actual structure of the plants. Potash performs many functions in plants, such as ;—

1. Potash is required for the formation of carbohydrates, such as Sugars, starches and and for their movement from one part of the plant to another.

2. Potash is essential for the synthesis of proteins in the plant.

3. It promotes cell wall formation. Without potash, growth is stunted either in parts or in the entire plant depending on the degree of deficiency.

4. Crop quality is improved by potash. It frequently increases the weight of grain, the sugar or oil content and improves flavour and colour.

5. Potash helps to produce strong supporting tissues of plants. Stiff straw and tissues are less susceptible to lodging.

6. By producing firm plant tissue, potash increases the resistence of plants to diseases, and unfavourable drought conditions and makes them strong enough to overcome pest attacks.

7. It helps in the development of healthy root systems.

8. Counteracts the undesirable effects due to excessive supply of other nutrients, particularly that of Nitrogen.

9. Being hygroscopic in nature, potash conserves the soil moisture.

10. Potash checks the soil erosion by making the root bound as it develops the healthy root system in the vegetative cover on the land.

11. Potash renders the fruit pulp firmer and consequently helps to improve the ability to withstand storage and transportation in in potatoes, vegetables & fruits.

Potash is very readily absorbed by the plant and its major part exists in the cell sap in a soluble form. It is very mobile within the plant tissues and moves readily from the older tissues to the ones where the growing processes are proceeding actively. There it is usually found in the highest concentrations.

POTASH IN SOILS :

Indian farm soils sometimes contain considerable amounts of "Total Potassium". This for years, gave the impression that most Indian soils are extremely well supplied with potassium for plant growth. But it has now been recognised that potassium present in most of these is in a form that is not easily available to the plant roots.

Potassium is generally found in soil in two forms; the "Exchangeable potash" or the potash which is readily available ts the plants, and the "Fixed Potash" which is inaccessible to plant roots and is locked up very firmly inside the mineral fragments of the soil. The exchangeable potash plus the fixed potash form the "total potash" of the soil.

'EXCHANGEABLE POTASH"

It represents only a part of the total potash, hardly 3% present in the soil, This explains why in soils which are rich in total potash the amount available to the plants is insufficient to meet the requirements of high yielding crops.

The 'Exchangeable Potash' is loosely bound to the surface of the clay and organic matter particles present in the soil and finds its way easily into the soil moisture where it moves freely and is available to the plant roots. The clay and organic matter particles holding the "exchangeable potash" on their surface can be considered as the potash store of the soil as They have the property of releasing fresh supplies of potassium into the soil moisture and the other part is retained on the surface of the clay and organic matter particles, where it is stored and gradually released.

"FIXED POTASH:"

The greatest part of the potash present in the soil is locked up inside the coarser fargments and inside the clay particles where it is beyond the reach of the plant roots. This is called "Fixed Potash." Through a weathering process, the "Fixed Potash" may be released from the inner part of the clay particles towards the outer part where it becomes exchangeable.

This process is however very slow and it is only after a very long period that the fixed potassium may become available, but in an amount which is usually so small that it is quite insufficient to meet the requirements of the crops. Conversely, the exchangeable potash also finds its way towards the inner part of the clay particles and becomes fixed. It does not necessarfly mean that this potash is lost as it may slowly revert again into an "Exchangeable form" as explained abave.

DEFICIENCY SYMPTOMS.

For a great many years, it has been realised that the appearance of a plant is an indication of the fertility status of the soil. If a plant is not getting enough of necessary plant nutrients, it will show cartain symptoms of starvation. These deficiency symptoms differ according to the varions essential elements.

Potash deficiency is generally first revealed by the yellowing of the tips and margins of older leaves with a more acute deficiency, the yellowing zones extend nearer to the centre or towards the leaf bases and later appear on the younger leaves as well.

As the growing period advances, the yellow parts of the leaves begin to 'Scorch', die off and appear reddish brown or brownish grey in colour. A generally typical symptom is a sharply defined demarcation

between the yellow or scorched areas and the healthy tissues of the leaves. The symptoms of potash deficiency are particularly marked in dry seasons or on the sudden incidents of drought periods.

Other symptoms may be shown by certain plants. For instance, rice will develop brown spots on the leaves, later if the deficiency continues the margin will scorch.

On sugarcane leaves, potash deficiency symptoms sometimes can be noted clearly. The margins have a yellowish brownish discolouration which will finally scorch with progressive deficiency. Reddish specks appearing on the main axis of the leaf are typical.

The difficulty to make use of deficiency symptoms for determining need for potash is that, by the time the information is obtained, the crop yields have already fallen too low for profitable production. By the time starvation signs are seen, soil's potash status would have reached a dangerously low level. It is much better to use other methods, such as soil tests to determine potash needs, long before the appearance of deficiency symptoms.

POTASH IN RELATION TO HEALTH, QUALITY AND YIELD OF CROPS :

Potash element is known as the "Quality element" and is necessary for the production of quality crops. The explanation is that potash deficiency induces abnormal and unhealthy crop growth, leading to poor quality production. For instance, the application of potash on sugarcane is essential to obtain a good quality crop. One sided use of Nitrogen has an undesirable influence on the healthy development of the crop, resulting in lodging, and delayed ripening. Experiments have proved that the application of potash helps to prevent these ill effects and improves the quality by increasing the sugar content. The combined application of all the major nutrients N. P. and K is thus necesssary to achieve optimum results.

IPSA'S TRIALS ON PADDY IN RAJASTHAN :

Following observations were noted by Messrs G. More and R. S. Yadava from the trials laid on paddy in Sri Ganganagar Distt. of Rajasthan State in the year 1967 on the effects of potassium on growth, heading and fruiting of rice plants from Physiological, Ecological, and Anatomical points of view :—

1. Potassium deficient plants were stunted in growth with small leaves and short, thin stems. The number of tillers were also reduced but the diffrences were not so remarkable.

2. Influence of Potassium deficiency at heading time varied with the variety. Some varieties had their heading time advanced, some delayed and some remained unchanged.

3. The yield of grains and straw decreased with progressive potassium deficiency and increased as more potassium was applied.

4. In potassium deficient plots, the stem length, ear length, number of branches per ear and weight of unhulled rice per plant decreased remarkably.

5. In potassium supplied plots, roots were long and new ones developed extensively while in deficient plants, roots were very poor, tap roots were thin and short and the branch roots very thin.

6. Potassium deficient plants had dark green leaves, on which brown spots, a hunger sign of potassium, began to appear along the main vein from the end of the leaf and then spread out over the whole blade.

7. The brown spots develop on the row of stomatal cells at first, then vascular bundles and rarely close to motor cells. Cells under the motorcells became brownish in colour very often. The stomata, however remaining unaffected.

8. Nitrogen was thought to be related to the brown spot production, and lack of Nitrogen checked the appearance of brown spots inspite of potassium deficiency.

9. In early stages of growth, potassium deficient plants had a lower water content (higher dry matter percentage) than plants supplied with potassium.

10. The decrease in yield under conditions of limited sunshine varied with the quantity of potassium supplied being less where the supply of potassium was sufficient.

11. Top dressing with potassium during the 30 days period before heading was very effective though the yield could be slightly below the level attained when potassium was supplied in sufficient quantity throughout the vegetative peeiod.

12. In degraded paddy fields and also in ill-drained paddy fields, the effect of top dressing with potassium was remarkable. The yield increased with the top dressing.

13. The amount of Carbohydrates distinctly increased due to potassium supply.

14. A large portion of Pollen grains obtained from plants of the potassium deficient plots had no trace of starch. It will fail to form grains and result in more chaff.

In Raichur Bellary, trials conducted by Messrs Indian Potash Supply Agency Limited (IPSA) on paddy reveals that application of 30 Lbs. K20 over the levels of 30 Lbs. N+30 Lbs. P205 per acre gives an average of 191 Lbs. per acre on increase. An increase in yield by 13%.

In Mandhya Distt. the IPSA trials conducted on the use of Potash, showed that a statistically significant increase of 5% in production was due to potash. A dressing of 30 to 40 Lbs. Nitrogen, 30 to 40 Lbs Phosphoric Acid and 30 to 40 Lbs potash is found to be very suitable for higher economic yieds of paddy.

The main benefit from the use of potash for tobacco is reflected in the quality of the leaf and and an improvement in the burning properties. The application of potash for tobacco helps to counteract the coarseness of the leaf induced by Nitrogen. A low chlorine content in the leaf is essential to ensure leaf quality and so potash fertilizer free of chlorine, is generally recommended for this crop.

An experiment was laid out in 1964 at Oil seed Research Sub-Station Midnapore (laterite soil) with three levels each of N, P_2O_5 and K_2O and their all possible combinations, to study the effect on the yield of Groundnuts by Messrs Indian Potash Supply Agency. The levels N, P_2O_5 and K_2O in Kg. per hectare were —

Nitrogen	0,11.2 and 22.4
Phosphoric Acid	0,33.6 and 67.2
Potash	0,22.4 and 44.8

The different levels of Nitrogen, Phosphoric acid and potash showed significant effect singly and in combination on the yield of crop. It was observed that phosphoric Acid and Potash should significantly increase the yield in comparison to Nitrogen. The interactional effect of P K showed that increased levels of Phosphoric acid and Potash applied together significantly increased the yield of groundnuts as would be revealed from the figures given below :

Yield of Groundnut Pods in Kgs. per Hectare

Treatment	P0	P1	P2
K0	766	859	1016
K1	909	937	1006
K2	844	1038	1209

To mention one more influence, potash creates healthy growth which helps plants to overcome frost damages. In North India, it is striking to observe a quick recovery in potash manured potato fields after a frosty night than those without potash.

A healthy plant is also in a better position to withstand attacks of diseases and pests. Observations have shown that incidence of Fungal diseases on jute were less severe on potash treated fields than on potash starved plots. Potash is also favoured for cotton on account of the protection which it affords against 'rust' ort he 'red blight' a disease of Physiological origin.

RESULTS OF IPSA TRIALS IN RAJASTHAN :

Results of simple fertilizer trials in cultivator's fields conducted by IPSA on paddy and Hybrid Bajra in Hanumangarh, Vijaynagar & Sri Ganganagar, District Sri Ganganagar, Rajasthan have given the following results.

Fertilizer extension trials were laid with single plots of three treatments (cultivator's usual Practice-CUP, NP and NPK) in areas where potash response to Paddy and Hybrid Bajra was not fully established or recommended by the State Deptt of Agriculture-Rajasthan.

The average quantity of plant food used in the CUP plots along with those for the treated are as follows:—

Crop	No of trials	Doses of plant nutrients per Acre CUP	NP	NPK
Paddy	20	80-0- 0	40-40-0	4o-40-40
Hybrid Bajra.	12	120-40-0	100-60-0	100-60-60

It will be seen that generally application of Phosphatic and Potassic fertilizers for both the crops is not common amongst the farmers and predominantly only Nitrogenous fertilizers and relatively small quantity of phosphorus are applied, while the use of potassic fertilizers was almost negligible.

The results after harvest obtained are as follows :

Crop	Yield in Kgs per Acre CUP G.	CUP S.	NP G.	NP S.	NPK G.	NPK S.	Cost of Manuring CUP	NP	NPK	Net Profit in Rs. per acre NP	NPK
Paddy	1120	1680	1920	2720	2160	2880	51.23	73.60	86 00	748.18	967.00
Hyb. Bajra.	559	700	775	772	1020	2560	47.04	149.50	168.06	116.32	261.14

Note : G for grain and S for Straw

CONCLUSIONS:

1. That generally the farmers use nitrogenous fertilizers alone for their crops at rates nearly the same as recommended by the state department of Agriculture. While phosphate is either not applied or used in very small quantities, use of potash is generally not common among the farmers.

2. That farmers do not get economic value for their investment on fertilizers–because such investments are often in favour of a single nutrient–the costlier nitrogenous fertilizers, which are not supplemented with adequate quantities of phosphoric acid and potash.

3. The application of potash over the NP levels give substantially higher returns to the farmers.

4. The balanced NPK fertilization results in a lower ratio of straw to grain is due to better nutrition of the plants.

With the ever increasing population in the country, it is imperative that cultivators should take up intensive cultivation of crops, utilizing potash along with nitrogen and phosphate. There appears to be an urgent need for the State Departments of Agriculture to revise their fertilizer recommendations for crops in favour of balanced nutrition that is, complete application of Nitrogenous, Phosphatic and Potassic fertilizers. Such a revision would be of great assistance to the extension workers in popularising balanced and complex NPK nutrition amongst the cultivators thus enabling them to obtain higher economic yields of the crops and optimum returns on their investment on fertilizers, thus helping the nation to attain its goal of self sufficiency in Food. ●●

"Patience and perseverance overcome mountains."

—Mahatma Gandhi.

"Perseverence opens up treasures which bring perennial joy. If the toil is great, so is the fruit there of."

Mahatma Gandhi—Harijan.

"He who loves not his country, can love nothing.

Byron—Ywo Foscari.

The Marathas in Rajputana from 1761-1818.

Dr. Rajendra Kumar

Disunity among the Rajputs and rivalry between the Maratha houses are the keystones to trace their relations during the period. The high sounding note of founding an empire on the ruins of the Moghal empire was lost unknowingly, unwillingly and the Marathas know not the when and where of it. Their role was then nothing short of exacting tribute which they called 'Peshkush' symbolising the inferiority of the Rajputs in their comparison. Much water has flown down the bridges since when the Marathas took pride in calling themselves to be in the line of 'Bappa Rawat.' A thousands pities for the Marathas who could not synchronise their strength with the Rajput valour to symbolise what they cherished. The friends of the bye-gone days now had become staunch enemies and enimity see- no reason or rhyme. The word honour which, however deceptive, it may be was so dear to the Rajputs that it ultimately ruined them though it was not destined to be their lot. The Rajputs, though retained their hereditary valour, lost much of that habit of eternal vigilance which is next to courage for protecting their land. Their lack of traditional fore-sightedness and breadth of vision proved to be their undeing at the hands of the Marathas. The Marathas often over-ran the country destroying and depredating it gradually till in time finding their people ruined and their resources fast dimnishing. The Marathas chiefs were constrained to assent to the payment of tribute by the Rajputs to purchase security from their incursions.

The collection of tribute furnished Sindhia and Holkar with a constant pretext of either actually invading their countries or menacing them with the devestation in seperable from the presence of a Maratha army—an evil from which no regularity of payment on their part could protect. As the expenses of equipping an army to enforce payment, which might never have been refused, furnished a never failing plea to require reimbursement and threw such difficulties in the way of final adjustment that the ill-fated Rajputs were constantly at the mercy of their rapacious owners.

By the dawn of the year 1761, the Marathas were completely entrenched in the arteries of Rajputana's political life and thier periodical visitations were soon converted into constant and regular hinges of their policy. This estranged whatever goodwill existed between the two proud races. The Rajputs were on the lookout for an opportunity when they could averg- their wrongs and the invasion of Ahmed Shah Abdali provided the House of Jaipur with a long awaited occasion for it. The Rajputs not only turned down the invitation of Sada Shiv Rao Bhau to send contigents to repel the menace of Abdali but actually distracted the attention of the Marathas by engaging them elsewhere in their thanas. The result was the defeat of the Marathas. The Rajputs could not be pardoned for this anti-national activity at the alter of History. They repeated the fatal folly of aiding and abetting-the invader, forgetting that the new conqueror might subject them to unprecedented spoilation.

The spirit of retaliation made Rajputs to attempt to form anti-Maratha coalitions. Madho Singh of Jaipur in 1761 unsuccessfully rosolved to form a common united front of the rulers of Mewar, Jodhpur, Kota, Bundi, Karaoli etc. Once again in 1767

Jawahar Singh of Bharatpur attempted to invite Jaipur, Jodhpur, Mewar and Kota against the Marathas. It was all an attempt to extract water out of stone. How grand the failure was and the so called Rajput's honour was the very essence of it. Poor Madho Singh had once again to accept the humiliating demand of Rs. 35,00001 of Malhar Rao Holkar and Bundi had to save herself by paying 3 lakhs of Rupees. The fate of Mewar was no better and the new Maharana Ari Singh was made to pay Rs. 49 lakhs by way of succession fee. It appeared as the Marathas had become Lord Paramount.

Mewar still had some more misfortunes as her lot. Soon there arose a dispute between Ratan Singh, the posthumous son of Rana Rai Singh II, and Rana Ari Singh because of the ungovernable temper and insolent demeanour of the latter. The Marathas were hired by the two factions by giving higher bids and Mewar turned into a battlefield. The Maharna ultimately had to pay Rs. 63½ lakhs to the Marathas when they had not so much of the pebbles in the treasury. Mewar nobles could not be calm even at this humiliation and they again and again paid the penalty for it by making payments to the Marathas. Jodhpur and Jaipur were comparitively in a state of peace during all these long years of 1766-1781 The constant visitations of the Marathas to Mewar were a given reminder to the Rajputs that their frequent calling in of the Marathas to settle their own disputes was a folly. They looked for a time when the Marathas might be engrossed in their own internal dissensions and the Rajputs could then satisfy their grudge. So when the Marathas were fighting against the English in what has been called as the First Anglo—Maratha war, the Rajputs sat on the fences and watched the events from a distance.

The treaty of Salbai signed on May 17, 1782 opened a new chapter for the Marathas in Rajputana. Mahadji Sindhia obtained a clearance certificate from Warren Hastings, the Governor-General, for the management of imperial affairs. Marathas henceforth were not the adventurers in Rajputana but the accredited representative of the Moghal emperor Shah Alam II to collect the Moghal dues as well as their 'Peskesh.' This duel role was simply a replica of their past role differing in degree only.

Mahadji took up the job of enforcing the double claims upon Jaipur now which resulted in the famous Lalsot campaign where in the Kachwahas of Jaipur and Rathores of Jodhpur had succeeded in pushing their arch enemy into a tight corner. It was an irony of fate that this lesson of unity among the Rajputs—a foreign thing for them-could not last long. Mahadji once again made the Kachwahas submit in the battle of Patan on June 20, 1790 and the Rathores in the battle Merta on September 10, 1790. Jodhpur paid the penalty by making a payment of 60 lakhs of rupees and Jaipur also pleased the Marathas by handing over 17 lakhs Rajputana lay prostrate at the hands of Mahadji and nothing tangible could deliver them from their present embarrassments.

Mewar fared no better than the Kachwahas and Rathores. Maratha generals of Sindhia and Holkar houses staged spoilation in Rajputana. The History of Rajputana in general and Mewar in particular became a veritable record of the mutual discussions of these generals who were made and unmade everyday on account of tangled politics at the court of Sindhia. Not only this but the Maratha generals of the two houses worked at cross purposes and could make the

Rajputs to take their sides in scoring their aims. These Marathas brick-baitings became more acute after the death of Mahadji Sindhia at Poona on Feb. 12, 1794. His successor Daulat Rao Sindhia, could not check the Maratha generals and Rajputana was devastated mercilessly at their hands.

Mewar, Jaipur and Jodhpur once again attempted to foil the trust of the Marathas from Rajputana. Mewar was forced to pay a fine of 17 lakhs of rupees. Jaipur and Jodhpur faced the disgraceful defeat at the windswept plains of Fatehpur in 1798 and the battle of Malpura on April 16, 1800.

When the old order of Rajput Chieftainship was verging towards a collapse, Lord Wellesley intervened for British interests. The laurels gained by General Wellesley and Lord Lake crippled Sindhia's and Holkar's powers in Northern India and forced them to loosen their stronghold on the Rajput states. The Marathas were intolerably aggressive and had wantonly overrun the territories of Jaipur, Jodhpur and Alwar. These states thought it safe to enter into alliance with the company. As a result the Marathas were sustained from all depredations and encroachments beyond the Chambal. Holkar's armies which were mostly fed from the spoils of Rajputana had to suffer much. But soon with the retirement of Lord Wellesley the treaties were abrogated excepting Alwar. The Rajput states were thus again abandoned to the mercies of the Marathas who vied with each other in teaching a lesson to them for this pro-British attitude.

The Rajputs heaved a sigh of relief as long as the British extended over them the canopy of their protection but as soon as the oxygen tank of British protection was withdrawn, Rajput once again began to gasp for breath like a patient from whom life was ebbing away.

The Rajput states were further subjected to unspeakable degradation at the hands of Marathas and Amir Khan on the marriage issue of Krishna Kumari, the Mewar princess. The plundering Marathas and Pindaris encouraged and aided the chiefs of Jaipur and Jodhpur for meting out thier own ends. The two chiefs agreed to have their rivalries resolved by a bond of double marriage in their families but the whole plan was thrown to the winds as one of them retraced his steps. Rajputana was mercilessly pillaged by the hordes of Marathas and Pindari leader Amir Khan till the latter completely mastered Rajputana and became the undisputed arbiter of the destinies of the land. Rajputana was aflame with dissensions for four years and the Maratha Sardars and Amir Khan made the hay till Krishna Kumari was put to death by the Mewar Durbar at the instance of Amir Khan. Sindhia made the Mewar Durbar pay him as much as Rs. 15 lakhs. After 1810, Sindhia pitched his camp neer Gwalior. He inherited a rich heritage and was outstripped by Amir Khan, who has established his influence at various courts in Rajputana.

It is a sad commentary on the state of affairs of Rajputana that Marathas chose it a fertile land, for their sportation. Rajputana was weak and fell an easy prey to the depredations of the Marathas. The Maratha chiefs, Sindhia and Holkar, launched a career of loot and rapine in Rajputana. After the insanity of Jaswant Rao Holkar, Amir Khan was a terror to the helpless Rajputs.

Amir Khan emerged as a powerful force from the wreckage of Moratha supremacy in Rajputana. The incompetent Rajput rulers

has to grndgingly accord him a treatment of equality. Maharaja Man Singh turned into a melancholy maniac, Jaipur also fared no better.

The rising tide af Pindari poweracted as a great set back to British influence in the North. The British, with the self-interests in view, thought of reviving the practice of entering into defensive alliances with Rajputs to deal a shattering blow to the Pindaries. The Rajputs were in need of a power which could deliver them from the menace of Pindaris as well as of the Marathas which they sought to be in the British protection, who established their supremacy in the sandy deserts of Rajputana. The responsibility lies with Sindhia and Holker who led to all this destruction and loss. The treaties with the British were a panacee for the ills Rajputana had suffered since long. Though the treaties extended British protection over the much harassed state of Rajputana, but ultimately they fell from the frying pan of Pindari barbarity and Maratha depredations into the fire of British supermacy. ●●

अध्यापक वर्ग

आचार्यः श्री दत्तात्रेय वाब्ले, एम० ए०, एल-एल० बी०

कला संकाय

राजनीति विज्ञान

१. श्री दत्तात्रेय वाब्ले, एम. ए. (राज. तथा इति.) एल-एल. बी. — विभागाध्यक्ष
२. ,, श्रीनिवास राव वि. घुले, एम. ए. (राज. तथा इति.) — लेकचरर
३. ,, वीरेन्द्र कुमार शर्मा, एम. ए. (राज. तथा इति.) — ,,
४. डॉ० राजेन्द्रकुमार, एम. ए. (राज. तथा इति.) — ,,

इतिहास

१. श्री कृष्णराव वाब्ले, एम. ए. (इति.) सी. टी. — उपाचार्य एवम् विभागाध्यक्ष
२. ,, श्रीनिवास राव वि. घुले, एम. ए. (राज. तथा इति.) — लेकचरर
३. ,, सुरेशचन्द्र राजवंशी, एम. ए. (इति. तथा राज.) एल-एल. बी. — ,,
४. डॉ. राजेन्द्र कुमार, एम. ए. (राज. तथा इति) — ,,

समाजशास्त्र

१. डॉ. मदनमोहन लवानिया, एम. ए. (समाज, इंगलिश, इति.), एल-एल. बी. — विभागाध्यक्ष
२. ,, अर्धेन्दु कुमार गुप्ता, एम. ए. (समाजशास्त्र) — लेकचरर
३. ,, गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव, एम. ए. (समाजशास्त्र) — ,,

इङ्गलिश

१. श्री रविशंकर वर्मा, एम. ए. (इंग.) एल. टी. — विभागाध्यक्ष
२. ,, शान्ति स्वरूप शर्मा, एम. ए. (इंगलिश तथा इतिहास) — लेकचरर
३. ,, माहराज कृष्ण मारवाह, एम. ए. (इंग) — ,,
४. ,, मनमोहनसिंह रिखी, एम. ए. (इंग.) — ,,
५. ,, उपेन्द्र शर्मा, एम. ए. (इंग.) — ,,
६. ,, अजयकुमार राजपाल एम. ए. (इंग) — ,,

हिन्दी

१. श्री माधवप्रसाद शर्मा, एम. ए. (हिन्दी तथा संस्कृत) — विभागाध्यक्ष
२. ,, लक्ष्मीकान्त शर्मा, ,, ,, (हिन्दी) — लेकचरर
३. ,, ओमप्रकाश रैना, ,, ,, (हिन्दी) — ,,
४. ,, विजय कुमार आर्य, ,, ,, (हिन्दी) — ,,

संस्कृत

१. श्री दिनेशचन्द्र शास्त्री, एम. ए. (संस्कृत तथा हिन्दी) — विभागाध्यक्ष

अर्थशास्त्र

१. श्री बिशेश्वरनाथ कश्यप, एम. ए. (अर्थशास्त्र) — विभागाध्यक्ष
२. ,, मिथलेश कुमार मिश्रा, एम. ए. (अर्थशास्त्र) — लेकचरर

भूगोल

१. डॉ. मनोहरलाल मित्तल, एम. ए. (भूगोल) पी-एच. डी. — विभागाध्यक्ष
२. श्री शरद विनायक कापडे, एम. ए. (भूगोल) — लेकचरर
३. ,, प्रभातीलाल जोशी, एम. ए. (भूगोल) — ,,
४. ,, श्यामलाल शर्मा, एम. ए. (भूगोल, चित्रकला), बी. एड. — कारटोग्राफर

चित्रकला

१. श्री रतनाकर विनायक सावलकर, बी. एससी., बी. टी., जी. डी. (कला), एम. एड., ए. एम. — विभागाध्यक्ष
२. ,, रामअवतार जैसवाल, बी. ए. डिप्लोमा (चित्रकला) एम० ए० (चित्रकला) — लेकचरर
३. ,, ओमप्रकाश अग्रवाल, एम. ए. (चित्रकला) — ,,

वाणिज्य संकाय

१. श्री घीसालाल जोशी, एम. ए. (अर्थशास्त्र), एम. कॉम., एफ. आर. ई. एस. — विभागाध्यक्ष एवम् संकाय भारसाधक
२. डॉ. कैलाश नारायण गुप्ता, एम.कॉम., पी.एच.डी., एल-एल.बी. — विभागाध्यक्ष, लेखाशास्त्र एवम् सांख्यिकी
३. श्री जय प्रकाश गुप्त, एम. कॉम — विभागाध्यक्ष, व्यावहारिक अर्थशास्त्र
४. ,, सुधीरकुमार सेन, एम. कॉम — लेकचरर
५. ,, कृष्ण बिहारीलाल माथुर, एम कॉम. — ,,
६. ,, रामेश्वर प्रसाद शर्मा, एम कॉम. — ,,
७. ,, राजकुमार यादव, एम कॉम. — ,,
८. ,, रामशंकर दुबे, एम. कॉम , एल-एल बी. — ,,
९. ,, दाऊ दयाल शर्मा, एम. ए .(अ० शा०), एम. कॉम. — ,,

विज्ञान संकाय

गणित

१. श्री ओंकारप्रसाद मित्तल, एम एससी. (गणित एवम् सांख्यिकी) — विभागाध्यक्ष
२. ,, बृजकिशोर शर्मा, एम. एससी. (गणित) — लेकचरर
३. डॉ. हरबिलास माल्, एम एससी. (गणित) पी. एच. डी. — ,,

रसायन-विज्ञान

१. श्री अजयसिंह पुरुषोत्तम बैंस, एम. एससी. (रसायन) — विभागाध्यक्ष
२. ,, ओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ, एम. एससी. (रसायन) — लेकचरर
३. ,, श्री गोपाल शर्मा, एम. एससी. (रसायन) — ,,

भौतिक-विज्ञान

१. श्री पुरुषोत्तम परांजपे, एम. एससी. (भौतिकी) — विभागाध्यक्ष
२. ,, सत्यनारायण गौड़, ,, ,, (भौतिकी) — लेकचरर
३. ,, अमरचंद अग्रवाल, ,, ,, (भौतिकी) — ,,
४. ,, महेन्द्रसिंह वर्मा, ,, ,, (भौतिकी) — ,,

जन्तु-विज्ञान

१. श्री सुधीर कुमार भार्गव, एम. एससी. (ज. वि.)	लेकचरर
२. ,, गोपाल नारायण टंडन, एम. एससी. (ज. वि.)	,,
३. ,, श्यामलाल माथुर, एम. एससी. (ज. वि.)	लेकचरर, सामान्य विज्ञान

वनस्पति-विज्ञान

१. श्री कृष्णचन्द्र, एम. एससी. (व. वि.)	लेकचरर
२. ,, सतीश वर्मा, ,, ,, (व. वि.)	,,

कृषि सकाय

१. डॉ. जयनारायण टंडन, एम. एससी. (कृषि-सस्य विज्ञान) पी. एच. डी., एफ. आई. सी. एस. (स. वि.)	अध्यक्ष, कृषि विभाग
२. श्री महेन्द्रसिंह छोंकर, एम. एससी. (कृषि)	पशु पालन तथा दुग्ध विज्ञान
३. ,, द. श्री राममोहन राव, एम. एससी. (कृषि)	सस्य विज्ञान
४. ,, कृष्णदास सक्सेना, एम. एससी. (कृषि)	कीट-विज्ञान
५. ,, उमेशचन्द्र पाँडे, एम. एससी. (कृषि)	उद्यान-विज्ञान
६. ,, राधाकान्त चतुर्वेदी, एम. एससी. (कृषि)	वनस्पति-विज्ञान
७. ,, कमलाकर सोपान जोशी, एम. एससी (कृषि)	वनस्पति-विज्ञान
८. ,, कल्याणसिंह खांगरोट, एम. एससी. (कृषि)	उद्यान-विज्ञान
९. ,, राम अवधसिंह, ,, ,, (कृषि)	अर्थशास्त्र
१०. ,, मसीह प्रसाद, एम. एससी. (कृषि)	रसायन विज्ञान
११. ,, मेघासिंह, एम. एससी (कृषि)	रसायन विज्ञान
१२. ,, गजेन्द्रसिंह शखतावत, एम. एससी. (कृषि)	प्रसार विज्ञान
१३. ,, श्रीराम गुप्त, एम. एससी. (कृषि)	कीट विज्ञान
१४. ,, कान्तिचन्द्र किशोर, बी. बी. एससी.	पशु चिकित्सा विज्ञान
१५. ,, रामगोपाल विजय, एम. एससी. (कृषि)	पशु-पालन तथा दु. वि.
१६. ,, त्रिलोकचन्द गुप्ता, ,, ,, (कृषि)	पादपरोग विज्ञान
१७. ,, भिखारीलाल वर्मा, बी. एससी. (अभियान्त्रिकी)	अभियान्त्रिकी
१८. ,, सुरेश चन्द्र पाल, एम. एससी. (कृषि)	अर्थशास्त्र

क्रीड़ा तथा खेलकूद

१. श्री श्रीधर अग्निहोत्री, एम. ए. डी. पी. ई.	पी. टी. आई.

मेडिकल ऑफिसर

१. श्री फूलचन्द शर्मा, बी. एससी. एल. पी सी. पी. (लंदन) एम. आर. सी एस. (इंगलैंड) एम. डी. (कोल.)

लिपिक वर्ग

१. श्री निर्विकार गुप्त, शिक्षा विशारद, साहित्यरत्न	लेखा अधिकारी एवम् प्रधान लिपिक
२. ,, जवाहरलाल हालाखंडी,	कार्यालय अधिकारी
३. ,, जयदेव शर्मा, बी. ए., डिप्लोमा (पु. वि.)	पुस्तकाध्यक्ष
४. ,, रामकिशन सेजरा	इनजीनियरिंग एवम् कृषि विभाग

५. श्री घेवरचन्द जैन
६. „ ठाकुरदास
७. „ सुरेशचन्द गर्ग
८. „ बिशन स्वरूप गुप्ता
९. „ रामलखन ओझा
१०. „ रविन्द्रकुमार
११. „ श्री निवास शर्मा
१२. „ बी. एल. भार्गव
१३. „ बालस्वरूप सरीन
१४. „ श्यामलाल अग्रवाल
१५. „ कुन्दनमल उबाणा
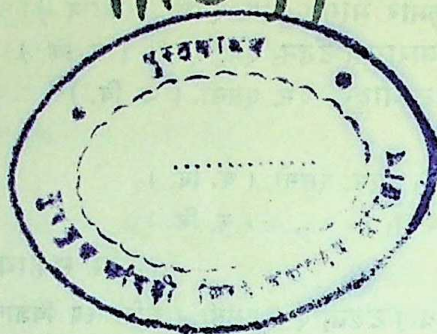
प्रयोगशाला सहायक वर्ग

१. श्री गोविन्द
२. „ मुरलीधर
३. „ तुलसीराम
४. श्री जेठानन्द
५. „ कन्हैयालाल
६. „ गोपालस्वरूप सक्सेना
७. मदनलाल इहनवाल

छात्रावास

१. श्री कृष्णराव वाब्ले, एम. ए., सी. टी. — प्रमुख अधीक्षक
२. „ बाल कृष्ण गौड़, एम. ए., एम. एड. — अधीक्षक
३. „ श्रीचन्द शर्मा — कम्पाउन्डर

FORM IV
(See Rule 8)

Statement about ownership and other particulars about newspaper MANISHI.

1. Place of Publication : Dayanand College, Ajmer
2. Periodicity of its publication : Yearly
3. Printer's Name : Satish Verma
   Nationality : Indian
   Address : Sushil Bhawan, Alwargate, Ajmer
4. Publisher's Name : R. S. Varma
   Nationality : Indian
   Address : Prof. Dayanand College, Ajmer
5. Editor's Name : R. S. Varma
   Nationality : Indian
   Address : Prof., Dayanand College, Ajmer
6. Names and Addresses of individuals who own the newspaper and Partners or shareholders holding more than one percent of the total capital. : Principal D. Vable, Dayanand College, Ajmer.

I, R. S. Varma, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Sd—R. S. Varma
Signature of Publisher.

Date, April 20, 1968.